ओ३म्

ऋषि दयानन्द
की
संघर्ष-यात्रा

(एक संक्षिप्त जीवनी)

——* * *——

सम्पादक :- आचार्य सतीश

प्रकाशक:- आर्यसमाज सैक्टर-23, 24,
रोहिणी, दिल्ली-85
सम्पर्क सूत्र-9350945482, 9810485231

प्रकाशकः- आर्यसमाज सैक्टर-23, 24,
रोहिणी, दिल्ली-85

सम्पर्क सूत्र-9350945482, 9810485231

प्राप्ति-स्थान :-

1. 32, पॉकेट-2, सैक्टर-23, रोहिणी, दिल्ली-85
2. 595, मैन रोड़, ग्रामसभा पूठकलां
(निकट-सै॰-23,रोहिणी) दिल्ली-86

संस्करण-प्रथम
आर्य समाज स्थापना दिवस
चैत्र शुक्ल प्रतिपदा-सम्वत् २०७१ विक्रमी
(31 मार्च 2014)

मूल्य :- ४० रुपये

आमुख

परमपिता परमात्मा की बनाई हुई इस वैविध्यपूर्ण सृष्टि में, और वह भी सृष्टि के प्रमुख पात्र, मानव के उत्पत्ति स्थल इस देश आर्यावर्त्त में यूं तो अनेक महापुरुषों ने जन्म लिया और अपने-अपने पुरुषार्थ से अपने जीवन को, समाज, राष्ट्र और विश्व को धन्य किया, जिससे करोड़ों लोग आज भी विश्वभर में उन्हें स्मरण करते हैं। लेकिन महाभारत युद्ध के उपरान्त वर्त्तमान के इस कलियुगाब्द (5115 वर्षों) के कालखण्ड को जब हम देखते हैं, और अपने श्रेष्ठ पूर्वजों, आप्त पुरुषों द्वारा उपदिष्ट विद्या, सिद्धान्तों, परम्पराओं और श्रेष्ठ जीवनमूल्यों का अध्ययन-अन्वेषण करते हैं, तब हम निःसंशय टिम-टिमाते दीपकों के प्रकाश की अपेक्षा ऋषिवर दयानन्द के सूर्य सम् प्रकाशित जीवन को पाकर धन्य हो जाते हैं। और कहने को विवश हो उठते हैं कि-"क्या ऐसा भी कोई मनुष्य शरीरधारी हो सकता है?" इतना अद्भुत, इतना आश्चर्यजनक जीवन सम्पूर्ण संसार में खोजने पर भी नहीं मिलता। विश्वभर में न जाने करोड़ों लोगों ने कैसे-कैसे लोगों को अपना गुरु, मार्गदर्शक, उद्धारक, पीर, पैगम्बर, ऋषि-मुनि अवतार और यहां तक कि-भगवान भी मान लिया है। आज भी अनेक लोग इस देश में अपने नामों के साथ ऋषि, महर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि, योगऋषि और देवर्षि जैसे शब्दों का प्रयोग उपाधि के रूप में करते हैं, लेकिन जब कोई भाग्यशाली ऋषि दयानन्द के जीवन को सत्यदृष्टि से देखता है, तब बोध होता है कि, इन शब्दों का कितना अवमूल्यन अज्ञानतावश लोग कर रहे हैं।

ऋषि शब्द-ऋषी-गतौ, धातु से निष्पन्न होता है, इगुपधात्कित्-इकुपत् धातुओं से इन् प्रत्यय होता है, और वह कित् होता है। अर्थात्-ऋषन्ति, जानन्ति इति ऋषयः। निरुक्त में आचार्य यास्क इस प्रकार व्याख्यान करते हैं-"ऋषिः दर्शनात्"-अर्थात्-जो प्रकृष्ट रूप से यथार्थ देखने वाला हो। "साक्षात्कृत धर्माण ऋषयो बभूवुः" अर्थात्-धर्म को जिन्होंने साक्षात् किया हो, वे ऋषि हुए हैं। पं॰ भगवद्दत्त कहते हैं-"इस आर्यावर्त (भारतदेश) का सम्पूर्ण ज्ञान भूत-भव्य-भविष्यज्ञ और सत्यधर्मपरायण, ऋषियों की देन है।"

इसको सार्थकता देने वाला प्रत्यक्ष उदाहरण ऋषि दयानन्द जी के जीवन में दिखाई देता है-"ऋषि दयानन्द जी के पास ऋषिकृत ग्रन्थों के साथ हठयोग प्रदीपिका, योगबीज आदि ग्रन्थ भी थे। इन ग्रन्थों में नाड़ी चक्र आदि का वर्णन दिया गया था। ऋषि के मन में इन चक्रों को साक्षात् देखने और सत्य जानने की इच्छा उत्पन्न हुई। तब ऋषिवर ने गंगा में बहते हुए शव को किनारे लाकर उसका छेदन किया, लेकिन जब ग्रन्थों के अनुसार कुछ न मिला तब उस शव के साथ उन मिथ्या ग्रन्थों को भी बहा दिया।" यह थी उनकी ऋषित्व की ओर बढ़ने की उत्कट अभिलाषा। किन्तु अत्यन्त खेद कि-आज भी लोग इन चक्रों और हठयोग के मोहजाल से निकल नहीं पाये हैं, ऋषि अनुयायियों को भला यह शोभा देता है? इससे पूर्व सत्य को जानने का अंकुर तो तभी फुट चुका था, जब वे बालक मूलशंकर कहलाते थे, और मात्र तेरह वर्ष की आयु में वे सच्चे परमात्मा को साक्षात् ही पाने को उद्यत् हो गये थे। इसी धुन में गृहत्याग कर और आश्रमों में, गुफाओं में, तथा भयानक डरावने जंगलों में, हिमाच्छादित कठोर पर्वत शिखरों पर उसी सत्य को पाने की उत्कट अभिलाषा लिए अविश्रान्त यात्रा किसी भी अन्य महापुरुष की जीवनी में पढ़ने को नहीं मिल सकती।

जहां लाखों लोग अपनी मुक्ति का विश्वास लेकर, उफनती नदियों की तरह बढ़ रहे हों, अपना तन–मन–धन और जीवन भी चला जाय, तो भी धन्य हो जाएंगे, ऐसी दृढ़ मान्यता लेकर, तथाकथित श्रद्धा के हिलोरे लेकर उमड़ पड़े हों, और इस विश्वास मान्यता एवं श्रद्धा को दृढ़मूल करने हेतु जहां हजारों साधु, संन्यासी, अवधूत नागा बाबा तथा अपने–अपने सम्प्रदायों के शिरोमणि मठाधीश आसन–सिंहासन जमाये आगामी वर्षों के लिए अपार धन सम्पदा के सपने संजोये विशाल भूभाग पर अवस्थित हुए हों। ऐसे स्थान पर पहुँचकर भला इस तीव्र धारा को ही सीधा करने का महान प्रयास निर्भीक, परम साहसी ऋषि देव दयानन्द के जीवन को छोड़कर कहां मिल सकता है? और किसने कुम्भ में पाखण्ड खण्डनी पताका फहराई होगी?

अर्थात् ऋषि दयानन्द जी का यह जीवनवृत्त प्रत्येक उस मानव के लिए पठनीय, मननीय और आचरणीय है, जो सत्य को पाना चाहता है, सत्यविद्या और सत्यस्वरूप परमपिता परमात्मा को पाना चाहता है। बहुत सारे जन हठ, दुराग्रह, एवं स्वार्थवश अपने द्वारा प्राप्त विद्या को ही पूर्ण मानकर उसी में रमे रहते हैं, और उससे अतिरिक्त कुछ भी देखने को तैयार नहीं होते, मैं साग्रह उनसे कहना चाहता हूँ, कि–एक बार आप ऋषि के इस संघर्षपूर्ण सत्यमय जीवन को देखिए तो सही, पढ़िए तो सही, आप कृत्कृत्य होंगे, अभीभूत होंगे, अवश्य ही निहाल हो जाएंगे।

यूं तो ऋषिवर दयानन्द जी की बहुत सी जीवनियां अनेक लेखकों द्वारा लिखित समाज में यश प्राप्त कर रही हैं, जिनमें पं॰ लेखराम जी, पं॰ देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय एवं स्वामी सत्यानन्द जी द्वारा लिखित प्रमुख हैं। पुनरपि **राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा** के **"आर्ष ग्रन्थ प्रकाशन निधि"** के प्रमुख एवं सभा के मुखपत्र "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" के सहसम्पादक आचार्य सतीश जी ने इस जीवन परिचय का संकलन–सम्पादन **आर्य निर्माण** के महान उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर किया है। क्योंकि–जो विशेष स्वाध्यायशील आर्यगण हैं, वे तो पूर्वोक्त लेखकों की लिखित पुस्तकें पढ़ते हैं, किन्तु जब तक **ऋषि–जीवन** जन–जन तक न जाये तब तक "आर्य–निर्माण" में अभाव बना रहता है, स्वयं से, अपने परिवार, समाज और राष्ट्र की विपरित परिस्थितियों से संघर्षरत सभी युवक सरलता से उपयूक्त पुस्तकें प्राप्त नहीं कर पाते, अतएव आवश्यकता को समझते हुए भी समय बीत जाता है, और आवश्यक ज्ञान नहीं हो पाता, फलस्वरूप सरकारी पाठ्यक्रम में पढ़ाई जाने वाली पंक्ति–"स्वामी दयानन्द सरस्वती एक महान समाज सुधारक थे, उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की" आर्यगणों के मन को बार–बार कचोटती है। और वे अधिक से अधिक प्रामाणिक तथ्य जानने को उत्सुक रहते हैं, अब यह पुस्तक इस रिक्तता की पूर्ति करेगी, साथ ही आर्यगणों के लिए ऐसा पाथेय सिद्ध होगी, जिससे उनकी आर्यपथ की यात्रा सरल एवं सुगम ही नहीं, प्रत्युत अतीव दृढ़ता और तीव्रता को प्रदान करने वाली होगी। आर्य संस्थाओं में भी लोग अब अपनी पुस्तकों के लेखनादि में अधिक लगे रहते हैं, प्रत्युत् ऋषिवर दयानन्द के सभी ग्रन्थ और आर्य महाशयों के जीवन–चरित न्यून ही उपलब्ध हो पाते हैं। जबकि प्राथमिकता इन्हीं पुस्तकों की होनी चाहिए। तभी आर्यजन, आर्य समाज और आर्यावर्त्त की बढ़ती सम्भव होगी। और हम कह सकेगे–"जय आर्य, जर्य आर्यावर्त्त"

ऋषि पथ-पथिक
-हनुमत् प्रसाद 'अथर्ववेदाचार्य'

सम्पादकीय

आर्य समाज के अनेकों विद्वानों द्वारा ऋषि का जीवन-चरित् लिखा गया। प्रारम्भिक काल में आर्य पथिक पं. लेखराम, देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय आदि द्वारा ऋषि दयानन्द का विस्तृत जीवन-चरित् काफी शोध के बाद लिखा गया। ऋषि के जीवन को विस्तार से जानने के लिए इन ग्रन्थों का स्वाध्याय आवश्यक है। लेकिन ऐसी युवा पीढ़ी जो आर्य परिवारों से नहीं है, राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा के आर्य निर्माण के अभियान के द्वारा आर्यसमाज में प्रवेश करती है, प्रारम्भ में उनके लिए एक ऐसा जीवन-चरित् आवश्यक है जो संक्षिप्त तो हो परन्तु ऋषि के जीवन व उनके द्वारा प्रतिपादित वेद के सिद्धान्तों के समझने में सहायक हो। इसके अलावा जो व्यक्ति आर्य समाज से परिचित नहीं हैं उनके लिए भी यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी, जिससे वे भी आर्य समाज और ऋषि दयानन्द के बारे में जान सकेंगे और भ्रान्तियों को दूर करके आर्यत्व की ओर प्रेरित होंगे, क्योंकि पुस्तक की भाषा अत्यन्त सरल, विषय वस्तु अनावश्यक विस्तार से रहित व घटनाएं सत्यता के निकट बिना किसी बाह्य आडम्बर के रखी गई हैं। इसका लाभ यह रहेगा कि ऋषि दयानन्द को उनके वास्तविक स्वरूप में समझने में सहायता मिलेगी और सिद्धान्तों के व्यवहारिक पक्ष को हम सरलता से समझ सकेंगे। अनेक व्यक्ति ऋषि के जीवन को जानना चाहते हैं कि किस प्रकार ऋषि के द्वारा विपरीत परिस्थियां होते हुए भी सिद्धान्तों को न केवल जीवन में धारण किया अपितु अनेकों लोगों को धारण भी करवाया।

ऋषि का यह जीवन-चरित् सिद्धान्ततः मूल रचना नहीं अपितु आर्य विद्वानों द्वारा ऋषि के जीवन-चरित् के सम्बन्ध में किये गये पुरुषार्थ का ही सरलीकरण है। अतः यह एक संकलित और सम्पादित पुस्तक है जिसके लिए पूर्व प्रकाशित ऋषि के जीवन-चरितों का सहारा लिया गया है। ऋषि के जीवन को समझकर उनके सिद्धान्तों को समझने में सहायता मिलती है क्योंकि ऋषि दयानन्द के जीवन में अनेकों ऐसे प्रसंग आते हैं जो हमें सिद्धान्तों को समझने व ग्रहण करने की प्रेरणा देते हैं। ऋषि दयानन्द का यह जीवन-चरित् घर-घर, व्यक्ति-व्यक्ति के पास पहुँचे यही हमारी हमारा आकांक्षा है। इसलिए सभी आर्यों के लिए आवश्यक हो जाता है कि इस पुस्तक का स्वाध्याय एक बार अवश्य करें और अन्यों को भी इसके लिए प्रेरित करें। महापुरुषों का जीवन हमेशा ही प्रेरणा का स्रोत होता है और ऋषि दयानन्द तो एक ऐसे महापुरुष हुए हैं। जिन्होंने अपने जीवन काल में अनथक संघर्ष करके वैदिक सिद्धान्तों को पुनःस्थापित किया। उनके इसी संघर्ष के कारण हमें अपने प्राचीन गौरव का परिचय प्राप्त हुआ और उसे जानने का तथा जनाने का प्रयास ऋषि दयानन्द से प्रेरणा लेकर अनेकों विद्वानों के द्वारा किया गया व आज भी किया जा रहा है। अतः ऐसे जीवन के संघर्ष की कहानी हमें अवश्य ही जाननी चाहिए।

आचार्य सतीश (रोहिणी, दिल्ली)

॥ ओ३म् ॥

अध्याय एक

जन्म व प्रारंभिक शिक्षा

जिस राष्ट्र में सृष्टि के आदि में मानव की उत्पति हुई हो, जिस भूमि से सार्वभौमिक, अविनाशी ज्ञान का प्रकाश करोड़ों वर्षों तक फैला हो, जिस भूमि के अधिपतिओं ने सारे संसार की भूमि को अपने श्रेष्ठगुणों से करोड़ों वर्षों तक आप्लावित किया हो, जिस भूमि पर उत्पन्न होने वाले मनुष्यों ने सारे संसार भर के मनुष्यों में मानवधर्म का अक्षुण उपदेश अपने आचरण से दिया हो, करोड़ों वर्षों तक जिसके निवासियों ने विश्व को परिवार मानकर विश्वभर के प्राणिमात्र के सुख की, शांति की, समृद्धि की और उन्नति की कामना सदैव अन्तःकरण की असीम गहराई से करते हुए ही पूर्ण पुरुषार्थ किया हो। वही राष्ट्र जब विनाश की ज्वालाओं में जलता हुआ भी, अज्ञान के घनघोर अन्धकार से घिरा ,आततायियों द्वारा हजारों वर्षों से आक्रान्त होता हुआ भी, अपने उद्धार का मार्ग नहीं खोज पा रहा था, जिसकी अपनी ही सीमाओं के भीतर मानवता त्राहि-त्राहि पुकार रही थी, लेकिन त्राण करने वाला दूर-दूर तक भी कोई दिखाई नहीं दे रहा था, स्वार्थ, छल, कपट से परिपूरित अन्धविश्वास को ही अपने उद्धार का द्वार समझने वाले अधर्मी ही जब धर्म की बोली लगा-लगाकर करोड़ों धर्मपिपासुओं को प्यासा ही मारने को उद्यत रहे हों, पाखण्ड, आडम्बर और अत्याचार जब दशों दिशाओं में फैलते जा रहे हों। ऐसे निराशामय वातावरण में भारत के सौराष्ट्र प्रदेश में मौरवी नाम की एक छोटी-सी रियासत के टंकारा नामक ग्राम में कर्षणजी लालजी तिवाडी रहते थे। वे सामवेदी औदीच्य थे। उत्तर भारत से आने के कारण वे औदीच्य ब्राह्मण कहलाते थे। कर्षणजी की प्रथम सन्तान मूलजी (मूलशंकर) थे, इन्हें दयाराम नाम से भी पुकारा जाता था। यही मूलजी बाद में स्वामी दयानन्द सरस्वती बने जिन्होंने केवल पतन के कारणों को खोजा अपितु राष्ट्रोत्थान के उपाय भी सबको दे गए जो आज भी उतने ही उपयोगी तथा आवश्यक हैं क्योंकि ये उपाय सार्वकालिक सिद्धान्तों पर आधारित हैं।

मूलजी का जन्म सं० १८८१ विक्रमी में हुआ। मूलजी के बाद कर्षणजी के घर में दो पुत्र और पुत्रियों ने जन्म लिया।

कर्षणजी नगर के सम्पत्तिशाली पुरुष थे। इनका व्यवसाय रुपयों का देन–लेन था। इनके पास अपनी जमींदारी और साहूकारी भी थी, ये अपने नगर के जमादार थे। जमादार का पद उन दिनों मौरवी रियासत में अंग्रेजी राज्य के तहसीलदार के समान था। इनके अधीन नगर रक्षा के लिए कुछ सिपाही भी रहते थे। ये धनी और पदाधिकारी होते हुए भी धार्मिक विचारों के व्यक्ति थे। इनके चरित्र में दृढ़ता तथा स्वभाव में कठोरता थी। मूलजी की माता मृदु स्वभाव की थी और उनमें दया की भावना अधिक थी।

बालक मूलजी की स्मरणशक्ति अच्छी थी व बुद्धि तीव्र थी। पिता ने इन्हें संस्कृत के श्लोक कंठस्थ कराने शुरू कर दिये। आठ वर्ष की अवस्था में इनका शास्त्र विधि के अनुसार उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कार हुआ। उपनयन संस्कार के अनुसार इन्हें गायत्री मन्त्र तथा संध्याविधि का शिक्षण दिया गया। रुद्राध्याय कण्ठस्थ करवाया गया और यजुर्वेद पढ़ाना प्रारम्भ किया।

मूलजी के पिता तथा अन्य सम्बन्धी शैव सम्प्रदाय के थे। शिव की उपासना में उनकी विशेष आस्था थी। मूलजी के अन्तःकरण में भी इन्हीं संस्कारों का बीजारोपण किया गया। इनके पिता इन्हें शैव सम्प्रदाय के अनुसार शिव उपासना, मिट्टी का शिवलिंग बनाकर उसको पूजने का आदेश देने लगे। इनके पिता कर्षणजी चाहते थे कि शिवरात्रि के दिन मूलजी विधिवत् उपासना करते हुए रात्रि जागरण करें, कथा का श्रवण करें।

माता के हृदय में पुत्र के प्रति मोह अधिक था। वह नहीं चाहती थी कि मेरा पुत्र एक दिन भी भूखा रहकर कष्ट सहन करे। वह अपने पति से निवेदन करती थी कि यह बालक सुकोमल है, प्रातः उठते ही कलेवा माँगता है। यह भूखा कैसे रह सकेगा?

सं० १८९४(ई० सन 1837) विक्रमी में मूलजी तेरह वर्ष के हो गए। इस समय तक मूलजी ने सम्पूर्ण यजुर्वेद कण्ठस्थ कर लिया था। अन्य वेदों के कुछ मन्त्र भी स्मरण कर लिये थे। व्याकरण में शब्द–रूपावली तथा कुछ लघु ग्रन्थ भी पढ़ लिये थे।

शिवरात्रि पूजन-सत्य की ओर

पिता की दृष्टि में मूलजी बुद्धिमान् बालकों की गणना में आ गए। मूलजी मेधावी बालक थे तथा धर्म के प्रति उनकी निष्ठा थी। पिता ने शिवरात्रि के दिन व्रत तथा रात्रि जागरण के महात्म्य की कथा पुत्र को सुनाई। पुत्र को शिवरात्रि के दिन उपवास रखने का आदेश दिया। कोमल मातृहृदय इस आदेश से दुःखी हुआ, माता ने पुनः अपने पतिदेव से विनय की, पर कर्षणजी अपने निश्चय से विचलित न हुए। वे कठोर प्रकृति के पुरुष थे। उनके आदेश में कोई परिवर्तन न हुआ। मूलजी के मन में भी पिता के उपदेश से श्रद्धा की भावना थी। अतः वे भी उपवास के लिए इच्छुक थे।

काठियावाड़ में दक्षिण भारत के अन्य प्रान्तों की भाँति, शिवरात्रि का व्रत फाल्गुन में न मनाकर उसके स्थान पर माघ वदी चौदह को मनाया जाता है। उस दिन मूलजी श्रद्धापूर्वक निराहार रहे। रात्रि के समय अपने पिता के साथ शहर से कुछ दूर एक बड़े शिवालय में पूजा के निमित्त गए। शिवरात्रि के समय चार प्रहरों में चार बार पूजा का विधान है। मूलजी प्रथम बार विधिवत् शिवरात्रि का व्रत रखकर पूजा के निमित्त दीक्षित होकर शिवालय में आए थे। शिवालय में अपूर्व समारोह था। मन्दिर के अन्दर और बाहर दीपक जगमगा रहे थे। सुगन्धित धूपबत्तियों के धूम्र से वायुमण्डल सुवासित था। भक्तजन स्नान करके सुन्दर वस्त्र धारण कर, हाथ में धूप सामग्री और कलश लिये, मस्तक पर विभूति रमाए मन्दिर में आ रहे थे। मन्दिर-द्वार पर घण्टावादन के साथ 'हर-हर महादेव' के उच्च स्वर के सम्मिलित नाद से समीपवर्ती प्रदेश गूंज रहा था। सभी के हृदयों में श्रद्धाभरी उमंग थी।

प्रथम प्रहर की पूजा प्रारम्भ हुई। पुजारी ने शिवजी का अर्चन किया। मूर्ति पर भोग चढ़ाया। उपस्थितजनों ने नतमस्तक होकर शिवलिङ्ग की मूर्ति के प्रति श्रद्धा प्रकट की। दूसरे प्रहर की पूजा भी इसी प्रकार सम्पन्न हुई।

अर्धरात्रि का समय था। निद्रादेवी सभी भक्तजनों को मूर्च्छित करने गली। शरीर शिथिल होने लगा। एक-एक करके सभी उपस्थितजन झूमते हुए सोने लगे। मूलजी के पिता और स्वयं पुजारी भी गाढ़ निद्रा में सो गए।

मूलजी अकेले आँखों पर पानी डालते हुए जागृत रहने का प्रयत्न करते रहे। उनके मन में श्रद्धा और उत्साह था। वे नहीं चाहते थे कि निद्रादेवी के वशीभूत होकर

शिव पूजा के माहात्म्य से वंचित रह जावें। शिवलिंग की मूर्ति की ओर ध्यान लगाए सुखासन पर बैठे थे। सब और शान्ति छायी हुई थी। इसी समय एक मूषक (चूहा) मन्दिर के शिवलिंग के पास आया। भक्तजनों द्वारा चढ़ाए हुए भोग (मिष्टान्) को निर्भय होकर उछल-उछल कर खाने लगा। मूलजी की दृष्टि इस घटना पर पड़ी। वे आश्चर्यचकित हुए। पूज्य पिता से शिवजी का माहात्म्य सुना था। उनकी अनन्त शक्ति का वर्णन सुना था। आज उन्हीं शिवजी के ऊपर मूषकों का नृत्य देख रहे थे। शिव भगवान् के निमित भक्तजनों ने परम आस्था के साथ जो भोग सामग्री लाकर विनम्रभाव से उनके प्रति अर्पण की थी, उसे ये मूषक खाते जा रहे थे। भगवान इन मूषकों के उच्छृंखल नृत्य को निष्क्रिय भाव से सहन कर रहे थे। इन मूषकों को हटाने में वे असमर्थ सिद्ध हो रहे थे।

मूलजी के बुद्धिमान मस्तिष्क में शङ्का उठी। किसी प्रकार का समाधान न पाकर पिता के समीप गए। उन्हें जगाकर घटना का वर्णन किया। उनसे नम्र निवेदन किया-तात्! आपने शिव भगवान् की अनन्त शक्ति का वर्णन मेरे सम्मुख किया था और कहा था कि यह शिवमूर्ति भी उसी के समान है। इसमें उनकी प्राणप्रतिष्ठा की गई है। यह मूर्ति अपनी रक्षा इन क्षुद्र जीवों से भी नहीं कर सकती। क्या यही सच्चे शिव हैं? मेरा चित्त शङ्काओं से व्याकुल है उसे शांत कीजिये।

पिता निद्रा के नशे में थे। पुत्र के इस प्रकार के वचन सुनकर सचेत हुए। पहले तो कुछ आवेश में आए। उसे इस प्रकार की शंकाएं करने के लिए धिक्कारा। मूलजी के मन में तरगें उठ रही थीं। जब तक उनकी शंकाओं का समाधान न हो वहाँ शान्ति न थी। वे पुनः-पुनः पिता से नम्रतापूर्वक आग्रह करने लगे-हे पितृ देव! मुझे सच्चे शिव के दर्शन का मार्ग बतलाओ। मेरे अशान्त मन को शान्ति प्रदान करो।

पिता ने पुत्र की जिज्ञासा को शांत करने के लिये कहा—वत्स! यह कलियुग है। हम लोग धर्म मार्ग से परे होकर स्वार्थ में मग्न हैं। ऐसे समय में देवों के देव शिव हमें दर्शन नहीं देते। वे कैलाश पर्वत पर वास करते हैं। उनकी मूर्ति बनाकर उसमें मन्त्रों द्वारा प्राण प्रतिष्ठा कर हम इसकी आराधना करते हैं। मूर्ति की आराधना से वे सर्वान्तर्यामी महादेव प्रसन्न होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह पाषाण मूर्ति है, साक्षात् देवता नहीं। तुम तर्क का परित्याग कर अपनी विचार तरंगों को शान्त करो।

श्रद्धामयी भावना से इस मूर्ति की आराधना करो। इसी में तुम्हारा कल्याण है।

पिता के वचनों से मूलजी को सन्तोष न हुआ। प्रतिमा पूजन से उनकी आस्था उठ गई। अब मन्दिर में बैठना दु:सह हो गया। पिता से विनयपूर्वक घर जाने की आज्ञा माँगी। पिता ने एक सिपाही साथ देकर घर जाने की आज्ञा प्रदान की। घर पहुँचते ही मूलजी माता के पास गए। माता से कहा-मुझे भूख लगी है। कुछ खाने के लिए दीजिए। माता ने पुत्र को वात्सल्य भाव से छाती से लगाकर कहा-पुत्र! मैंने तो पहले ही तेरे पिता को कहा था कि तू निराहर न रह सकेगा। अच्छा, बैठो, यह मिष्ठान लो, पर पिता को न बतलाना कि तूने कुछ खा लिया है। उन्हें यदि यह सूचना मिल गई कि तूने कुछ खा लिया है तो वे तुझ पर बहुत क्रोध करेंगे। मुझे भी बुरा-भला कहेंगे। वे धार्मिक व कठोर प्रकृति के व्यक्ति हैं। उस आयु में भी बालक अपने निर्णयों के प्रति दृढ़ था। जब उनको वह उपवास निरर्थक सिद्ध हो गया तो उन्होंने उसे तोड़ने में एक क्षण भी नहीं लगाया और सत्य को ग्रहण करके ही निश्चिन्त हुए। **आध्यात्मिकता में तर्क का समावेश होने से अन्धश्रद्धा की जड़ें हिल गई।**

शिवरात्रि समारोह की समाप्ति के दूसरे दिन कर्षणजी घर आए। आते ही उन्हें किसी सूत्र से सूचना मिल गई कि मूलजी ने घर आकर व्रत भङ्ग कर दिया है। उन्होंने पुत्र की इस कार्य के लिए भर्त्सना की और भविष्य में ऐसा ना करने का आदेश दिया।

मूलजी का अपने चाचा के प्रति विशेष स्नेह था। चाचा को भी बालक मूलजी बहुत प्रिय लगते थे। मूलजी ने चाचा से निवेदन किया कि मैं विद्याध्ययन में विशेष ध्यान देना चाहता हूँ। ये व्रत आदि कर्मकाण्ड तथा पूजा-पाठ मेरे अध्ययन में बाधक हैं। अत: आप पिताजी को समझायें कि वे मुझे इन सब के लिए बाधित न करें।

मूलजी के चाचा और माता, दोनों ने कर्षणजी को समझाया और मूलजी स्वाध्याय में विशेष रूप से प्रयत्नशील रहें, इसके लिए सहमत कर लिया। पिताजी की अध्ययन के लिए सहमति प्राप्त कर मूलजी ने समीप के ही एक विद्वान् पण्डित से निघण्टु, निरुक्त, मीमांसा आदि ग्रन्थ पढ़ने शुरू किये।

बहिन तथा चाचा की मृत्यु-अमिट प्रभाव

सं० १८९६ विक्रमी में मूलजी ने १६ वें वर्ष में पदार्पण किया। इन दिनों एक

रात्रि के अवसर पर मूलजी इष्ट मित्रों समेत अपने एक बन्धु के घर पर गए हुए थे। वहीं एक भृत्य ने आकर समाचार दिया कि आपकी बहिन विषूचिका रोग से ग्रस्त है। उसकी अवस्था गम्भीर है। आप शीघ्र चलें। मूलजी तुरन्त घर पहुँचे। बहिन की अवस्था जो उस समय चौदह वर्ष की थी, अति गंभीर थी। सभी परिजन उसकी सेवा में व्यग्र थे। वैद्यजी चिन्तित मुख मुद्रा में उसे ओषधि दे रहे थे। सब प्रकार के उपचार करने पर भी दशा नहीं सुधरी। अन्त में मूलजी के आने के दो घण्टे बाद सुकुमार बालिका प्राण–विसर्जन कर सब परिवारजनों को शोक सागर में निमग्न कर गई। सारे घर में करुण क्रन्दन होने लगा। सुन्दर कन्या को विकराल काल ने ग्रसित कर लिया। पिता व्याकुल होकर हाहाकर कर रहे थे। माँ अश्रुधारा के साथ विलाप कर रही थी। सभी बन्धुबांधव शोक–विह्वल थे। मूलजी एक ओर पाषाण मूर्ति के समान अविचल खड़े हुए विचारमग्न मनुष्य–जीवन की क्षण–भंगुरता पर विचार कर रहे थे। सोच रहे थे–सभी प्राणियों का यही अवश्यम्भावी भविष्य है। मुझे भी इसी प्रकार अपने जीवन का अन्त देखना पड़ेगा। यह असह्य वेदना सहनी पड़ेगी। इसी समय मूलजी ने संकल्प किया कि मैं इस मृत्यु पर विजय पाने के साधनों की खोज करूंगा। अमर पद को प्राप्त करने का प्रयत्न करूंगा।

इसी प्रकार विचारमग्न अवस्था में दिन बीतते गए। मूलजी विद्याध्ययन के साथ आत्मचिन्तन करते रहे। सांसारिक व्यवहार से उनका चित्त विरक्त होने लगा। सं० १८९९ विक्रमी (ई० सन 1842) में मूलजी के चाचा भी विषूचिका रोग से ग्रस्त हुए। मूलजी के चाचा एक अच्छे विद्वान् तथा साधु प्रकृति के व्यक्ति थे। मूलजी को जन्म से ही बहुत स्नेह करते थे। अनेक प्रकार के उपचार करने पर भी चाचा की अवस्था में सुधार न हुआ। मूलजी को संकेत कर उन्होंने अपने पास बिठा लिया। जिस भ्रातृ पुत्र को सदा वात्सल्य भाव से पाला पोसा, आज उससे विदाई का समय आ गया। चाचा की अश्रुधारा बहने लगी। भ्रातृ पुत्र से भी न रहा गया। वह भी फूट–फूट कर रोने लगा।

यमराज का शासन बहुत कठोर है। उसके हृदय में करुणा का कोई स्थान नहीं। उसके सामने क्रन्दन और विलाप का कोई मूल्य नहीं। उसे कर्तव्यपालन करना है। उसमें किसी प्रकार की ढ़ील नहीं हो सकती। मूलजी के रोने–धोने का कोई

परिणाम न निकला, यमराज जीवन-ज्योति को लेकर चला गया। शरीर अचेतन अवस्था में वहीं पड़ा रह गया। कुछ समय विलाप कर बन्धुवर्ग शरीर को अर्थी पर रखकर श्मशानघाट ले गए। मन्त्रोच्चारण के साथ उसकी दाह क्रिया कर दी गई।

मूलजी इस अवस्था पर विचार करने लगे-'मेरे स्नेही चाचा आज इस संसार में नहीं रहे। जब कभी जीवन में कोई कठिनाई आती थी मैं उनके चरणों में उपस्थित हो जाता था। वे ही मेरे माता-पिता को कहकर मेरा मार्ग सुगम कर देते थे। विधाता ने उनको मेरे से जल्दी ही छीन लिया। आज वे सदा के लिए मुझे छोड़कर चले गए। मैं उनके निकट बैठा हुआ देखता ही रह गया और कुछ कर न पाया। एक दिन सब को ऐसे ही जाना होगा।'

गृह-त्याग

शिवरात्रि की घटना से मूलजी के मन में सच्चे शिव के दर्शन की अभिलाषा का प्रादुर्भाव हुआ। बहिन की मृत्यु के बाद मृत्यु पर विजय पाने का संकल्प किया था। चाचा की मृत्यु से वह संकल्प और दृढ़ हो गया। अब वे अनुभव करने लगे कि जो बन्धु आज मुझे स्नेह की भावना से देख रहे हैं, मेरे लिए सभी प्रकार के कष्ट सहन कर मुझे सुखी रखना चाहते हैं, उनको विकरालकाल का ग्रास बनना है। मुझे इस जन्ममरण के तत्व को जानना है। इससे सदा के लिए छुटकारा पाना है। इसलिये आवश्यक है कि इस बन्धन से मुक्त हुआ जाए।

मूलजी ने अपनी भावनाओं को माता-पिता पर प्रकट नहीं किया। पर पुत्र के आचरण से उन्हें उसका वैराग्य की ओर झुकाव स्पष्ट दीखने लगा। वैराग्य की प्रवृत्ति को हटाना है तो पुत्र का शीघ्र विवाह किया जाए। यह सोचकर कर्षणजी ने पुत्र का विवाह करने का निश्चय कर लिया। अपनी कुल मर्यादा के अनुकूल सुन्दर सुयोग्य कन्या की तलाश करना शुरू कर दिया।

मूलजी को ज्योंही पिता के निश्चय का पता लगा उन्होंने अपने माता-पिता से दृढ़ता से साथ निवेदन किया कि मैं अभी किसी प्रकार विवाह करने के लिए तैयार नहीं हूँ। मुझे अभी अध्ययन करना है। अपने अन्य बन्धुओं और मित्रों द्वारा भी माता-पिता पर दबाव डलवाया कि जिस अवस्था में आपका पुत्र अभी विद्या प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है, आप उसको विवाह बन्धन में डालने के विचार का परित्याग करें।

पिता ने दो वर्ष तक विवाह न कराने का आश्वासन दे दिया।

अब मूलजी ने पिता से अनुरोध किया कि वे उसे व्याकरण ज्योतिष आदि शास्त्रों का अध्ययन करने के लिए काशी जाने की अनुमति प्रदान करें। पुत्र की वैराग्य की ओर प्रवृत्ति देखकर पिता ने काशी जाने की आज्ञा नहीं दी। माता भी अपने पुत्र को अपनी आँखों से परे दूर देश में नहीं जाने देना चाहती थी क्योंकि वह सोचती थी कि काशी गया हुआ व्यक्ति अधिक पढ़कर विवाह नहीं करवाता है।

टंकारा से तीन कोस परे कर्षणजी की जमींदारी में एक विद्वान् पण्डित निवास करते थे। मूलजी ने उन के पास रह कर विद्याध्ययन की आज्ञा मांगी। माता-पिता ने इसकी स्वीकृति प्रदान की। वे वहाँ जाकर पढ़ने लगे। विद्याध्ययन करते हुए भी उन्हें यही धुन रहती कि किस प्रकार मैं सच्चे शिव के दर्शन करूं ? गुरू जी से तथा अपने मिलनेवालों से समय-समय पर यही प्रश्न करते । सभी का एक ही उत्तर था कि योग का अभ्यास ही इसका एकमात्र उपाय है और विवाह के बंधन में पड़कर काम, मोह और परिग्रह के पाश में फंसकर योग का अभ्यास नहीं हो सकता। इस प्रकार अपने उद्देश्य में विवाह बन्धन को सबसे बड़ा बाधक समझते हुए मूलजी ने विवाह न करने का निश्चय कर लिया।

कर्षणजी को पुत्र के विचारों की सूचना उसके गुरु द्वारा मिल गयी। पिता ने तुरन्त पुत्र को घर पर बुलवा लिया। उसके विवाह की तैयारी करने लगे, आवश्यक सामग्री का संग्रह करना प्रारम्भ कर दिया। बन्धु बान्धवों को सूचना भेज दी गई। इस समय मूलजी की आयु इक्कीस वर्ष की थी। वे विवाह न करने का दृढ़ निश्चय कर चुके थे। पिता और पुत्र के निश्चय परस्पर विरोधी थे। पिता पुत्र के लिये सुशील कन्या को घर में लाकर उसे आजीवन बन्धन में बांधना चाहते थे। पुत्र बहिन और चाचा की मृत्यु के दृश्य देख कर बन्धु वियोग की असह्य वेदना का अनुभव कर चुका था। वह अच्छी तरह जान चुका था कि आनन्दमय उत्सव के साथ आज का सांसारिक स्नेह संयोग कल वियोग की सन्तप्त ज्वाला के रूप में परिणत होना है। इसे कोई टाल नहीं सकता। इन्हीं विचारों के साथ वह चुपचाप घर से भाग निकलने का अवसर देख रहा था।

विक्रमी संवत् १९०३ (ई० सन् 1846) की घटना है। सभी बंधु-बांधव सारा

दिन विवाह की तैयारियों में व्यस्त रहने से थके हुए होने के कारण रात्रि के समय गाढ़ निद्रा में सोए हुए थे। मूलजी आँखें बन्द किए हुए पड़े थे। पर निद्रा में न थे। प्रहरी सब को सोया हुआ समझ कर निश्चिन्त हो कर सुषुप्ति का आनन्द लेने लगे। मूलजी चुपचाप उठे। पुनः घर वापिस न आने का निश्चय कर घर से बाहर निकले।

घर से निकल कर मूलजी ने अपने गांव से चार कोस दूर प्रथम रात्रि बिताई। रात्रि का एक प्रहर शेष रहते वे पुनः उठकर आगे चल पड़े। सांयकाल से पहले ही चौदह कोस और चल कर एक ग्राम में पहुँचे। वहाँ पहुँच कर पास ही एक हनुमान मन्दिर में रात्रि बिताई। इस यात्रा में मूलजी ने चतुरता से काम लिया। टंकारा से मुख्य मार्ग से न चलकर इधर–उधर से निकले जिससे मार्ग में कोई परिचित व्यक्ति न मिले और पकड़े न जा सकें।

अगले दिन माता–पिता पुत्र को घर में न पाकर अत्यन्त चिन्तित हुए। कर्षणजी ने पुत्र की तलाश में सब और सिपाही भेजे, पर वे खाली हाथ वापिस आ गए। विवाह की तैय्यारियाँ सब ठप हो गई।

मूलजी योगियों की खोज में शैलाग्राम में पहुँचे। यहाँ एक लाला भक्त रहते थे। वे अपनी भक्ति और योग साधना के लिए प्रसिद्ध थे। मूलजी ने लाला भक्त से योग साधनों को सीखने की इच्छा प्रकट की और श्रद्धा से सीखना प्रारम्भ कर दिया।

शैला में मूलजी का परिचय एक ब्रह्मचारी से हुआ। उसने विधिवत् ब्रह्मचर्य आश्रम ग्रहण करने का परामर्श दिया। मूलजी को ब्रह्मचर्य की दीक्षा देकर इन का नाम शुद्धचैतन्य रखा। इस समय से वे शुद्धचैतन्य कहलाने लगे। साधारण वस्त्र छोड़कर पीले और लाल वस्त्र धारण करने लगे।

लालाभक्त त्यागी पुरुष थे। शैला में इन्होंने एक रामचन्द्र जी का मन्दिर बनवाया था। इस मन्दिर में बाहर से आनेवाले साधुओं तथा पथिकों को सदाव्रत दिया जाता था। इन्हीं सेवाओं के कारण लालाभक्त की आस–पास के प्रदेश में प्रसिद्धि थी। शुद्धचैतन्य को जिस वस्तु की जिज्ञासा थी, वह यहाँ न मिली, अतः वे यहाँ से कोट भङ्गारा होते हुए सिद्धपुर की ओर चल दिए।

सिद्धपुर में कार्तिक मेले पर बड़ा समारोह हुआ करता था। उस में साधु संन्यासी एकत्रित होते थे। शुद्धचैतन्य अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए अच्छे योगी

साधु की तलाश में थे। सिद्धपुर जाते हुए मार्ग में एक पुराने परिचित वैरागी से साक्षात्कार हुआ। वैरागी ने शुद्धचैतन्य का सब हाल जान लिया और उसके पिता के पास सन्देश भेज दिया कि तुम्हारा पुत्र सिद्धपुर के मेले पर आया हुआ है।

शुद्धचैतन्य सिद्धपुर पहुँचकर नीलकण्ठ के मन्दिर में एकत्रित संन्यासियों और ब्रह्मचारियों के साथ ठहर गए। सभी प्रकार के महात्मा वहां आए हुए थे। कुछ अच्छे शास्त्रों के व्याख्याता थे। कुछ मौन अवलम्बन कर दर्शनार्थियों को हाथ के इशारे से आशीर्वाद दे रहे थे। कुछ नाना प्रकार से शरीर को कष्ट देनेवाली तपस्याएं कर रहे थे। साधुओं के चारों ओर भक्तजन मंडरा रहे थे। लोग अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए श्रद्धा से नमस्कार करते हुए आशीर्वाद की भिक्षा माँग रहे थे। शुद्धचैतन्य अपनी धुन में मस्त था। उसका इष्ट सभी भक्तजनों से भिन्न था। वह तो सच्चे शिव के दर्शन और मृत्यु पर विजय पाने के साधनों के ज्ञान की प्राप्ति के लिए किसी योगी सन्त को ढूंढ रहे थे।

कर्षणजी समाचार पाते ही कुछ सिपाहियों को लेकर सिद्धपुर पहुँच गए। पुत्र की खोज करने लगे। सभी साधुओं के आवास स्थान पर घूमने लगे। एक दिन प्रातः काल शुद्धचैतन्य नीलकण्ठ के मन्दिर में साधुसन्तों के बीच में बैठे हुए थे। पिता भी अपने सिपाहियों के साथ वहाँ पहुँचे। पुत्र को लाल पीले कपड़ों में देखकर अत्यन्त क्रोधित हुए। उसे पकड़ कर उसके कपड़ों को फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला। तूम्बी छीनकर फेंक दी। क्रोधभरे वचनों से धमकाने लगे।

शुद्धचैतन्य ने विनयपूर्वक क्षमायाचना की व घर लौटने का आश्वासन दिया। फिर पिता के दिये श्वेत वस्त्र धारण किये। पिता के साथ उनके आवास स्थान पर जा कर ठहरे।

कर्षणजी को पुत्र पर विश्वास न था। वे समझते थे कि भय के कारण मूलजी (शुद्धचैतन्य) ने वापिस घर चलने का वचन दिया है। यह फिर इसी प्रकार चुपचाप भाग सकता है। इधर पुत्र भी पुनः पिता से छुटकारे के अवसर की प्रतीक्षा में था। उसके मन में योगाभ्यास की धुन थी। सच्चे शिव के दर्शन की लालसा थी व मृत्यु पर विजय पाने की दृढ़ भावना थी।

कर्षणजी की आज्ञा के अनुसार प्रहरी सतर्क थे। उन्हें आज्ञा थी कि रात्रि के

समय भी जागते रहें। कहीं ऐसा न हो कि वह पुनः भाग निकले।

पिता पुत्र सो रहे थे। पुत्र आँखें बन्द किये हुए भागने का उपयुक्त अवसर देख रहा था। उसकी आँखों में नींद नहीं थी। वह अवसर की तलाश में था। प्रहरी सिपाहियों ने समझा कि अब दोनों निद्रा के नशे में हैं। वे भी निश्चिन्त होकर सो गए।

रात्रि के तीन बजे का समय था। शुद्धचैतन्य ने पिता और सिपाहियों को सोया हुआ पाकर लोटा उठाया और दबे पांव बाहर निकल पड़े। एक मील दूर एक मन्दिर में बड़ का घना वृक्ष था। उसकी शाखा प्रशाखाएँ फैली हुई मन्दिर के गुम्बज के ऊपर छाई हुई थीं। उसी वृक्ष पर चढ़कर मन्दिर के गुम्बज से स्पर्श करती हुई शाखाओं में छिप कर शुद्धचैतन्य बैठ गया।

सुबह होने पर पुत्र को अपनी शय्या पर न पाकर कर्षणजी और उनके सिपाहियों ने पुनः उसकी तलाश में दौड़धूप की। जिस मन्दिर के समीप बड़ के वृक्ष पर मूलजी छिपे बैठे थे, वहाँ भी सिपाही पहुँचे। शुद्धचैतन्य ऊपर बैठे उन सिपाहियों का तमाशा देख रहे थे। किसी प्रकार पता न पाकर कर्षणजी और उनके सिपाही टंकारा वापिस चले गए। शुद्धचैतन्य भूखे-प्यासे दिनभर वृक्ष पर बैठे रहे जो उनका अपने लक्ष्य के प्रति दृढ़ता का परिचायक है।

सायंकाल अन्धकार के समय जब कोई प्राणी बाहर नहीं दीख रहा था, शुद्धचैतन्य वृक्ष के नीचे उतरे। अप्रसद्धि मार्ग व पगडण्डियों से खेतों में होते हुए यात्रा आरम्भ की। प्रसिद्ध मार्गों से जाने में उन्हें भय था कि कहीं कोई परिचित व्यक्ति न मिल जाए। इस प्रकार अहमदाबाद पहुँचे। अहमदाबाद से बड़ौदा आए। यहाँ चेतन मठ में स्वामी ब्रह्मानन्द से नवीन वेदान्त का अध्ययन किया।

संन्यास-धारण

बड़ौदा से शुद्धचैतन्य चाणोद कर्णाली पहुँचे। चाणोद और कर्णाली नर्मदा नदी के तट पर स्थित दो पृथक्-पृथक् स्थान हैं। यहाँ एक परमहंस परमानन्द स्वामी रहते थे। वे वेदान्त के अच्छे विद्वान् थे। उनसे कुछ वेदान्त के ग्रन्थों का अध्ययन आरम्भ कर दिया, साथ ही कुछ योगीजनों से वार्तालाप करते रहे।

यहाँ रहते हुए शुद्धचैतन्य के मन में संन्यास ग्रहण करने की इच्छा हुई क्योंकि वे चाहते थे कि अधिक-से-अधिक समय विद्या प्राप्ति और योगाभ्यास में

लगाया जाये। अपने एक मित्र द्वारा चाणोद कर्णाली के प्रतिष्ठित संन्यासी चिदाश्रम स्वामी से प्रार्थना की कि वे शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी को संन्यास की दीक्षा दें। शुद्धचैतन्य युवक थे, संन्यास के उपयुक्त उनकी आयु न थी, अतः चिदाश्रम स्वामी ने दीक्षा देने की अनुमति नहीं दी। कुछ मास पश्चात् पास के एक जङ्गल में एक टूटे फूटे घर में दो संन्यासी श्रङ्गेरी मठ से द्वारकापुरी जाते हुए ठहरे। इनमें एक का नाम पूर्णानन्द सरस्वती था। वे विद्वान् वीतरागी साधु थे। शुद्धचैतन्य ने पुनः अपने मित्र पण्डित द्वारा स्वामी पूर्णानन्द से अनुरोध किया कि वे इन्हें संन्यास की दीक्षा दें। स्वामी पूर्णानन्द ने भी एक बार तो मना कर दिया, पर शुद्धचैतन्य की दृढ़ आस्था तथा शुद्ध चरित्र व उसकी योग्यता को देखकर उसे संन्यास आश्रम की दीक्षा देना स्वीकार कर लिया। दीक्षा देकर उसका नाम दयानन्द सरस्वती रखा।

कुछ दिन पश्चात् दोनों संन्यासी चाणोद से चले गए। दयानन्द सरस्वती भी चाणोद व्यासाश्रम आ गए। व्यासाश्रम में स्वामी योगानन्द से कुछ योग क्रियाएं सीखीं। व्यासाश्रम से छिनूर जाकर वहाँ कृष्णस्वामी से कुछ व्याकरण का अध्ययन किया। छिनूर से पुनः चाणोद वापिस आए। इस प्रकार स्वामी दयानन्द निरन्तर विद्याध्ययन में लगे रहे।

चाणोद में इन दिनों स्वामी शिवानन्दगिरि तथा स्वामी ज्वालानन्दपुरी नाम के दो योगियों से इन का परिचय हुआ। ये दोनों साधु योग के अच्छे ज्ञाता व अभ्यासी थे। दयानन्द सरस्वती इनसे योग विषयक चर्चा करते रहे। थोड़े ही दिनों में ये दोनों योगी चाणोद से चले गए। दयानन्द सरस्वती से कह गए कि एक मास के पश्चात् वे अहमदाबाद के दुग्धेश्वर मन्दिर में मिलेंगे। विद्यापिपासु थे ही, यथा समय उनके पास पहुँच कर योगविद्या का अध्ययन तथा अभ्यास किया।

दयानन्द सरस्वती को इन दोनों योगियों से बहुत कुछ ज्ञान मिला, अभ्यास में भी आगे बढ़े, परन्तु पूर्ण तृप्ति नहीं हुई। अपनी प्यास बुझाने के लिए वे यहाँ से आबू पर्वत गए। वहाँ भी भवानी गिरि नामक पर्वत के शिखर पर एक साधु से कुछ योग क्रियाएं सीखीं। आबू से उत्तराखण्ड जाने का निश्चय किया।

हिमालय की ओर

मूलजी के रूप में दयानन्द सरस्वती संवत् १९०३ विक्रमी में घर से निकले

थे। आठ वर्ष तक सिद्धपुर, बड़ौदा, चाणोद, अहमदाबाद तथा आबू पर्वत आदि स्थानों में आत्मतृप्ति के लिए भ्रमण करते हुए सं० १९११ विक्रमी(ई० सन 1855) में आबू से हरिद्वार पधारे। यहाँ इन दिनों कुम्भ का मेला हो रहा था। यह विशाल जनसमूह का मेला उनकी कल्पना से परे था। यहाँ रहते हुए त्यागी महात्माओं से मिलते रहे, परन्तु अधिकांश समय गंगापार चण्डी पर्वत पर एकान्त स्थान में योगाभ्यास भी करते रहे। हरिद्वार से ऋषिकेश आए। यहाँ भी योग के अभ्यास में रत रहे। यहाँ पर दयानन्द सरस्वती के साथ एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधु मिल गए। तीनों ऋषिकेश से टिहरी गए। टिहरी में दयानन्द सरस्वती ने वहाँ के राजपण्डित से तन्त्रग्रन्थ प्राप्त किये। तन्त्रग्रन्थों को पढ़ते हुए उनमें कुछ आचारहीनता की पराकाष्ठा के लेखों को देखकर इन ग्रन्थों से घृणा उत्पन्न हो गई। वहाँ से श्रीनगर होते हुए केदारघाट पहुँचे। केदारघाट में उनका परिचय एक साधु गंगागिरि से हो गया। गंगागिरि चरित्रवान साधु थे। इनकी प्रवृत्ति योगमार्ग में थी। दोनों की परस्पर मैत्री हो गई। दो मास तक एक स्थान पर रहते हुए परस्पर योग चर्चा करते रहे।

केदारघाट में वर्षाकाल बिताकर दयानन्द सरस्वती उसी ब्रह्मचारी और दोनों पहाड़ी साधुओं के साथ रुद्रप्रयाग, अगस्त्य मुनि के आश्रम होते हुए शिवपुरी पहुँचे। यहीं शीतकाल व्यतीत किया। यहाँ ब्रह्मचारी और दोनों साधुओं ने उनका साथ छोड़ दिया। शिवपुरी से दयानन्द सरस्वती अकेले गुप्त काशी, गौरी कुण्ड, भीमगुफा आदि रमणीक पर्वतीय स्थानों को देखते हुए पुनः केदारघाट आ गए।

केदारघाट में रहते हुए उनके मन में यह विचार आया–'सम्भव है कि चारों ओर हिमाच्छादित गिरि शिखरों व कन्दराओं में एकान्त में कोई महात्मा योग समाधि के आनन्द का अनुभव करते हुए निवास करते हों। उनकी तलाश में मुझे प्रयत्नशील होना चाहिये।' यह विचार कर केदारघाट से चलकर तुङ्गनाथ के शिखर पर पहुँचे। यहाँ एक भव्य मन्दिर था जिसमें बहुत सी देव मूर्तियाँ थीं। चारों ओर का पर्वतीय दृश्य बहुत सुहावना था। यहाँ से नीचे की ओर उतरना आरम्भ किया। पर्वतीय मार्गों की जानकारी न थी। आगे जाकर दो मार्ग आ गए। उनमें से एक ऐसे मार्ग से चल दिये जो जङ्गल की ओर निकलता था, जहाँ ऊँचे नीचे पाषाण खण्ड थे। जलहीन छोटी नदियों के बहाव स्थल थे। कुछ दूर जाकर यह मार्ग भी रुक गया। चारों ओर कंटीली झाड़ियों

से भरा वन था। ऊँचे नीचे पाषाण खण्डों में गिरते पड़ते उन कंटीली झाड़ियों में से गुजरना पड़ा। वस्त्र फट गए। शरीर घायल हो गया। पैर कांटों से छिद गए लेकिन मन में प्रबल पुरुषार्थ की भावना बनी रही। पर्वत खण्ड को पार कर उसकी तराई में पहुँचे। यहाँ एक सुगम मार्ग दिखाई दिया। चारों ओर घना अन्धकार था। साहस के साथ उस मार्ग से आगे बढ़े। कुछ दूर जाकर कुटियों का एक समूह दिखाई दिया। कुटीवासी ग्रामीणों से पूछने पर पता लगा कि यह मार्ग ओखी मठ की ओर जाता है। विश्राम किये बिना आगे बढ़े। फिर ओखी मठ पहुँच कर विश्राम किया।

प्रातः काल उठे। पिछले दिन की सब विपदाओं को भूल गए। शारीरिक क्लेशों की परवाह न कर पुनः अपने उद्देश्य की तलाश में निकल पड़े।

इस समय दयानन्द सरस्वती की आयु तीस वर्ष की थी। यौवन का पूर्ण विकास था। मन में उत्साह तथा उमंग थी। योगियों की खोज के पीछे उन्मत्त थे। चारों ओर भ्रमण के अनन्तर किसी प्रकार का कोई सकारात्मक चिह्न न मिलने पर कुछ दिन पीछे पुनः ओखीमठ वापिस आ गए।

प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ ओखीमठ धन सम्पत्ति से भी पूर्ण था। साधु सन्तों का आना-जाना बना रहता था। सभी प्रकार का सुख साधन तथा आडम्बर विद्यमान था। वैराग्य के पीछे पूर्ण वैभव की अपूर्व छाया थी।

दयानन्द सरस्वती कुछ दिन यहाँ ठहरे। मठ के महन्त इनकी भव्य मूर्त्ति को देखकर प्रभावित हुए। महन्त ने उन से आग्रह किया कि आप इस मठ में स्थायी तौर पर रह जाइए। मेरे शिष्य बनकर इस वैभव के स्वामी बन जाइए।

वह उन्मत्त साधु अपने पिता की इससे अधिक विपुल सम्पत्ति को छोड़ कर घर से निकला था। उसके मन में योग साधना के द्वारा उस परम पिता परमात्मा की विभूति का दर्शन कर मृत्यु पर विजय पाने की कामना थी। उसके सामने इस नश्वर सम्पत्ति का कोई मूल्य न था। महन्त के प्रस्ताव को अस्वीकार कर ओखी मठ से चल कर जोशी मठ पहुँच गए।

जोशी मठ में आचार्य शङ्कर के सम्प्रदाय के कुछ दाक्षिणात्य संन्यासी रह रहे थे। उनसे कुछ-कुछ योगशास्त्र के तत्वों का विवेचन कर बद्रीनारायण चले गए। बद्रीनारायण के मन्दिर में शङ्कराचार्य के समय से केरल के ब्राह्मण पुजारी के तौर पर

रहते आए हैं। ये रावल कहलाते हैं।

दयानन्द सरस्वती रावल जी से वेदादि शास्त्र के विषय में वार्तालाप करते रहे व अपने उद्देश्य की चर्चा की। रावल जी ने बताया कि यहाँ आस पास कोई योगी निवास नहीं करते। कभी–कभी कोई महात्मा आ जाते हैं और चले जाते हैं। दयानन्द जी यह उत्तर सुनकर कुछ निराश तो हुए, पर साहस न छोड़ा।

एक दिन सूर्योदय होते ही बद्रीनाथ मन्दिर से निकल कर पर्वत की तराई में चल पड़े। चलते–चलते अलखनन्दा नदी के किनारे पहुँचे गए। अलखनन्दा के किनारे जाते हुए उसके निकास स्थान पर पहुँचे। यह सारा मार्ग बर्फ से ढका हुआ पर्वत मालाएँ थीं। आगे बढ़ने का कोई मार्ग न दीख रहा था। नदी के पार माणा नामक एक ग्राम के चिह्न दिखाई दे रहे थे। असह्य शीत का समय था। दयानन्द सरस्वती ने साधारण वस्त्र पहने हुए थे। न कुछ खाया था, न पानी पिया था। कभी–कभी बर्फ का टुकड़ा मुँह में लेकर उसी से कुछ क्षुधा शान्त करने का प्रयास किया।

अलखनन्दा का पाट आठ–दस हाथ था। पानी की गहराई कहीं कम कहीं अधिक थी। इसकी ऊपरी तह बरफ से ढकी हुई थी। दयानन्द के मन में उत्साह था। साहस के साथ नदी पार करने के लिए उद्यत हो गए। पर्वतीय नदी की तीक्ष्ण धार में बरफ के नुकीले टुकड़ों की रगड़ से नंगे पैरों के तलवे छिद गए। उन से रक्त निकलना शुरू हो गया। रक्त स्राव की तीव्र वेदना से पैर डगमगाने लगे। असह्य शीत से शरीर कांपने लगा। कई बार तो ऐसा अनुभव होता था कि अभी नदी में ही बरफ पर शरीर गिरने को है। कोई सहारा न था। इस परम कष्टमयी अवस्था में भी निराशा का नाम न था। एक ईश्वर पर विश्वास था। सब कुछ सहन करते हुए नदी पार की। पार पहुँचने पर शरीर पूर्णतया अवसन्न हो गया। पैरों में उठने की शक्ति न रही। शरीर पर जो कपड़े थे उन्हें उतारकर पैरों पर घुटनों तक पट्टी बाँधी। प्रातः काल से कुछ खाया न था। भूख विह्वल कर रही थी, इस जनशून्य स्थान पर सहायता की कोई आशा न थी। इसी स्थिति में विश्राम करते हुए कुछ समय बाद दो मनुष्य उधर आते हुए दिखाई दिये। उन्होंने स्वामी जी की साहसमयी क्लेश कहानी सुनकर अपने साथ चलने की प्रार्थना की। पर यहाँ चलने के लिए सामर्थ्य ही न था। उनकी प्रार्थना अस्वीकार करनी पड़ी।

अल्पकालिक विश्राम करने के पश्चात् फिर उठे। वसुधारा नामक स्नानतीर्थ

पर पुनः कुछ विश्राम कर रात्रि के समय ही बद्रीनारायण पापिस आ गए। यहाँ आने पर रावल जी ने दयानन्द सरस्वती को अस्त-व्यस्त देखकर उनसे पूछा, महाराज! सारा दिन कहाँ बिताया? दयानन्द सरस्वती ने अपनी यात्रा का ब्यौरा सुनाया। रावल जी ने भोजन का प्रबन्ध किया। भोजन करने पर शरीर में शक्ति संचार का अनुभव हुआ। गाढ़ निद्रा में सो गए।

प्रातः काल रावल जी से विदाई की आज्ञा लेकर नीचे की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में रामपुर और काशीपुर होते हुए द्रोणसागर पहुँचे। यहाँ शीत ऋतु बिताई। इस समय तक उन्हें लगभग 10 वर्ष गृहत्याग को हो चुके थे। अनेकों स्थानों की यात्रा कर चुके थे, अनेकों लोगों से मिल चुके थे। अनेकों प्रकार की विद्याओं से परिचित हो चुके थे। निरन्तर विचार-चिन्तन में रहे थे। इस सबके बाद भी उद्देश्य की पूर्ति होती नहीं लग रही थी। जिसके लिए गृहत्याग किया था उस लक्ष्य का साधन कहीं नहीं मिल रहा था। इसी कारण एक बार मन में आया कि हिमालय में कहीं गलेशियर पर जाकर शरीर त्याग दिया जाये, परन्तु ईश्वरीय प्रेरणा देखिये कि तुरन्त यह विचार तो चला गया और मन में आया कि शरीरत्याग से तो लक्ष्य प्राप्ति की संभावना भी समाप्त हो जायेगी और संघर्ष करने में एक संभावना तो बची रहेगी। और पुनः संघर्ष का प्रारम्भ हो गया और राष्ट्रोत्थान साधन बन गया उनका यह निर्णय।

द्रोणसागर से मुरादाबाद होते हुए गढ़मुक्तेश्वर गङ्गा तट पर आए। गंगा तट पर विचरते हुए धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय तथा योग का अभ्यास करते रहे। दयानन्द सरस्वती के पास ऋषिकृत ग्रन्थों के साथ हठयोग प्रदीपिका, योगबीज आदि ग्रन्थ भी थे। इन ग्रन्थों में नाड़ी चक्र आदि का वर्णन दिया गया था। उनके मन में इनकी सत्यता की परीक्षा करने की इच्छा उत्पन्न हुई। एक दिन गंगा में एक शव बहता हुआ जा रहा था, उसे किनारे लाकर उसका छेदन शुरू किया। इन ग्रन्थों के वर्णन के अनुसार प्रत्यक्ष दर्शन न कर शव के साथ उन ग्रन्थों को भी बहा दिया।

गंगा तट पर विचरते हुए फर्रूखाबाद, कानपुर, प्रयाग, मिर्जापुर ठहरते हुए काशी पहुँचे। काशी से चण्डालगढ़ होते हुए पुनः नर्मदा नदी का उत्पत्ति स्थान देखने तथा नर्मदा की वनस्थलियों में योगियों की तलाश करने की इच्छा से दक्षिण की ओर चल दिये।

नर्मदा-स्रोत की यात्रा

नर्मदा की यात्रा में भी दयानन्द सरस्वती ने कम कष्ट नहीं उठाये। नर्मदा नदी की घाटी में दक्षिण दिशा की ओर चलते हुए घने जंगल में पहुँच गए। इस निर्जन स्थान में एक पर्णकुटी दृष्टिगोचर हुई। पर्णकुटी के द्वार पर जाकर वहाँ रहने वालों से दूध माँगा। इन दिनों दयानन्द सरस्वती केवल दूध ही पीते थे, दूध पीकर आगे बढ़े। आध मील दूर जाने पर सब ओर से मार्ग बन्द हो गया। एक सङ्कीर्ण सी पगडण्डी दिखी। उसी पर आगे बढ़ चले।

कुछ दूर चलने पर उनका एक जङ्गली रीछ से सामना हुआ। वह अपनी पिछली टाँगे खड़ी कर गुर्राने लगा। दयानन्द सरस्वती कुछ क्षण निःस्पन्द होकर उसे देखते रहे, फिर धीरतापूर्वक सोटा उठाकर उसके मुँह की ओर किया। रीछ आवाज करता हुआ भाग गया। रीछ की गर्जना सुनकर आस पास के लोग एकत्रित हो गए। उन्होंने दयानन्द सरस्वती से विनयपूर्वक प्रार्थना की कि महाराज! आप इस जंगल में न जाएँ। यह जंगल खतरनाक जानवरों से भरा हुआ है। हमारे साथ चल कर हमारी निवास भूमि में रहिए। हम आपकी सेवा करेंगे।

दयानन्द सरस्वती संकल्प कर चुके थे-मुझे नर्मदा नदी का उद्‍गम स्थल देखना है। मार्ग में कहीं किसी योगी महात्मा के दर्शन हो गए तो उससे योग विद्या की शिक्षा पूर्णकर अपने जीवन को कृतार्थ करना है। उन्होंने उन पर्वतीय जनों को धन्यवाद देते हुए कहा-भद्रजनो! आप मेरी चिन्ता न करें। मैं ईश्वर विश्वास के साथ अपने आपको सुरक्षित समझता हूँ। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए सभी कठिनाइयों का मुकाबला करूँगा। जब ईश्वर सहायक है तो भय का स्थान कहाँ।

दयानन्द सरस्वती ने दृढ़ संकल्प के साथ पुनः यात्रा आरम्भ की। आगे सारा जंगल अगणित फूलों के वृक्षों और कंटीली झाड़ियों से भरा हुआ था। कहीं से निकलने का मार्ग न था। कुछ दूर घुटनों के बल चलना पड़ा। कांटेदार झाड़ियों से वस्त्र फट गए। शरीर लहूलूहान हो गया और भूख से बलहीन होने लगा।

सूर्यास्त का समय हो गया। अन्धकार का साम्राज्य बढ़ने लगा। दयानन्द सरस्वती धैर्य का अवलम्बन करते हुए निश्चित होकर आगे बढ़ते रहे। फिर एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जो चारों ओर पहाड़ियों से घिरा हुआ था। वृक्षों, झाड़ियों और लताओं

से पूर्ण था।

कुछ दूर झोंपड़ियों में से धुन्धले प्रकाश की रेखा बाहर निकलती हुई दीखने लगी। पास ही एक पहाड़ी झरना था। इस झरने के पास बकरियाँ चर रही थीं। दयानन्द सरस्वती ने इसी झरने के किनारे एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने का निश्चय किया। इतने में देखा कि उस ग्राम के कुछ स्त्री पुरुष बालक बालिकाएँ ढोल बजाते हुए गाय बैलों को लेकर कोई उत्सव मनाने की भांति आ रहे थे। उन्होंने इस साधु को परदेसी समझ कर घेर लिया। एक बूढ़े व्यक्ति ने आगे बढ़कर पूछा–महाराज! तुम कहाँ से आ रहे हो? कहाँ जा रहे हो?

दयानन्द सरस्वती ने उत्तर दिया–मैं काशी से आ रहा हूँ। नर्मदा नदी का उद्गम स्थल देखने के लिए जा रहा हूँ। यह उत्तर सुनकर वह समुदाय आगे चला गया। दयानन्द सरस्वती हाथ मुँह धोकर ध्यानावस्थित हो गए।

कुछ समय बाद उनमें से दो ग्रामीण पुरुष पुनः वहाँ आए। उन्होंने दयानन्द सरस्वती से ग्राम में चलकर विश्राम करने की प्रार्थना की, दयानन्द सरस्वती ने ग्राम में जाना स्वीकार न किया। इस पर उन दोनों पुरुषों ने स्वामीजी को दूध लाकर पिलाया। सारी रात वहाँ आग जलाकर उनकी सुरक्षा के निमित्त जागते रहे। रातभर गहरी नींद सोकर दयानन्द सरस्वती ने पुनः अपने उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त यात्रा आरम्भ की। यह घटना सं० १९१३ यानी सन् १८५६ की है। इसके उपरान्त् तीन वर्ष तक दयानन्द सरस्वती कहाँ रहे? क्या करते रहे? इसके बारे में निश्चित इतिहास नहीं मिलता है।

प्रजाचक्षु दण्डी स्वामी विरजानन्द का सानिध्य

उत्तराखण्ड की यात्रा आरम्भ करते हुए हरिद्वार में दयानन्द सरस्वती ने पूर्णानन्द स्वामी से दण्डी स्वामी विरजानन्द की विद्वत्ता की ख्याति सुनी थी। अपनी नर्मदा यात्रा में भी उन्होंने स्वामी विरजानन्द की विद्वता के विषय में और अधिक जानकारी प्राप्त की।

स्वामी विरजानन्द का जन्म पंजाब में करतारपुर जिले के गङ्गापुर नामक एक ग्राम में हुआ था। पाँच वर्ष की आयु में चेचक रोग से उनकी दोनों आँखों की ज्योति जाती रही। कुछ वर्ष बाद उनके पिता का भी देहान्त हो गया। बारह वर्ष की आयु में ही इन्होंने घर के कष्टों के कारण गृहत्याग कर दिया था।

अपने जीवन में विद्याध्ययन के लिए आपने बहुत कष्ट सहन किए। कनखल में पूर्णाश्रम स्वामी से संन्यास ग्रहण किया। यहाँ रहते हुए कुछ व्याकरण ग्रन्थों का अध्ययन कर विद्वत्पुरी काशी में गए। काशी में अध्ययन तथा अध्यापन दोनों कार्य करते रहे।

स्वामी विरजानन्द प्राचीन ऋषिकृत ग्रन्थों को निर्भ्रान्त मानते थे। मनुष्यकृत ग्रन्थों की सत्यता में इन्हें विश्वास न था। अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निरुक्त आदि ग्रन्थों में इनकी विद्वत्ता तथा अध्यापन शैली की चारों ओर प्रसिद्धि थी।

अनेक स्थानों में परिभ्रमण करने के उपरान्त मथुरा में इन्होंने एक पाठशाला स्थापित की। अपने विद्यार्थियों को ऋषिकृत ग्रन्थ ही पढ़ाते थे।

स्वामी विरजानन्द जी की प्रशंसा सुनकर दयानन्द सरस्वती भी संवत् १९१७ (ई॰ सन 1860) में मथुरा आ गए। मथुरा पहुँच कर वे रङ्गेश्वर महादेव के मन्दिर में ठहरे। वहाँ से एक दिन दण्डी स्वामी विरजानन्द की पाठशला में गए। द्वार खटखटाया। दण्डीजी ने नवागन्तुक के लिए द्वार खोला और अपने स्वाभाविक तरीके से सिद्धासन लगा कर बैठ गए।

दयानन्द सरस्वती ने चरणस्पर्श कर प्रणाम किया। दण्डीजी ने दयानन्द सरस्वती से आगमन का प्रयोजन जानना चाहा। उन्होंने नम्रतापूर्वक निवेदन किया–

गुरुवर ! मैं चिरकाल से ज्ञान का पिपासु हूँ। देश–देशान्तर में विचरता रहा हूं। जहाँ जो कुछ पाया उससे अपनी प्यास बुझाने की चेष्टा की। अभी तक तृप्ति नहीं हुई। प्राचीन ऋषिकृत ग्रन्थों में आपकी आस्था तथा विद्वत्ता का यशोगान सुनकर आपकी शरण में आया हूं।

विरजानन्द ने कहा–दयानन्द! यदि तुम आर्ष ग्रन्थों को पढ़ना चाहते हो और सच्चे ज्ञान को प्राप्त करना चाहते हो तो सर्वप्रथम जो कुछ अब तक तुमने पढ़ा है उसे भुला दो। जब तक मिथ्या ज्ञान का आवरण तुम्हारी बुद्धि पर पड़ा है तुम सत्यज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। तुम्हारा तर्क भी उसी मिथ्या ज्ञान पर आश्रित रहेगा। तुम आर्ष ग्रन्थों को शीघ्र न समझ सकोगे। अतः सभी मनुष्यकृत ग्रन्थ अभी तुम्हारे किसी काम के नहीं।

इसके अतिरिक्त एक बात का और विचार कर लो। तुम संन्यासी हो, तुम्हारा

कोई ठिकाना नहीं। जिसका कोई रहने का स्थान नहीं, भोजन की नियमित व्यवस्था नहीं, वह नित्य समयानुसार पाठशाला में पढ़ने के लिए नहीं आ सकता। जब तक तुम अपने निवास और भोजन की व्यवस्था नहीं कर लेते, मैं तुम्हें अपने पास विद्यार्थी के रूप में आने की अनुमति नहीं दे सकता।

प्रज्ञाचक्षु विरजानन्द सिद्धासन में बैठे थे। शरीर कमजोर लेकिन देदीप्यमान था। वाणी में विशेष आकर्षण था। कोई आडम्बर न था, सत्यता ही झलकती थी।

दयानन्द भी सत्य का उपासक था। उस दिव्यमूर्ति को देखकर प्रभावित हुआ। गुरु के आदेशानुसार अपने पास संग्रहीत सभी मनुष्यकृत ग्रन्थों को यमुना में बहा दिया। निवास तथा भोजन की व्यवस्था के लिए पूछताछ करने के लिए चल दिए। मथुरा में उनका कोई परिचित न था। उनके हृदय में ईश्वर का विश्वास व धैर्य था।

मथुरा में इन दिनों एक गुजराती ब्राह्मण अमरलाल जोशी रहते थे। वे औदीच्य ब्राह्मण थे। प्रभु की इन पर कृपा थी। उदारचित्त व्यक्ति थे। परिचय व परस्पर वार्तालाप के बाद इन्होंने दयानन्द सरस्वती के भोजन के प्रबन्ध का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया। दयानन्द सरस्वती इसके लिए आजीवन उनका उपकार मानते रहे। अमरलाल जोशी का नाम भी दयानन्द सरस्वती के साथ सदा के लिए अमर हो गया। भोजन प्रबन्ध के साथ दयानन्द सरस्वती के निवास का प्रबन्ध भी विश्राम घाट पर लक्ष्मीनारायण के मन्दिर में नीचे की मंजिल में एक कोठरी में हो गया।

भोजन और निवास का प्रबन्ध कर दयानन्द सरस्वती गुरु के द्वार पर गए। उनके चरणों में नतमस्तक होकर अन्य शिष्यों के साथ अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य का अध्ययन प्रारम्भ किया। यद्यपि गुरु नेत्रहीन थे, पर उनकी प्रतिभा अपूर्व थी। प्राचीन ऋषिकृत ग्रन्थों के वे विश्वकोष थे। सब ग्रन्थ कण्ठाग्र थे। आद्योपान्त ग्रन्थ का पाठ करते गए। उसके रहस्य को समझाते गए। शिष्यों की शंकाओं का संतोषजनक समाधान करते गए। उनकी वाणी में सरस्वती का साक्षात् तरङ्गित नृत्य देख कर शिष्य आश्चर्यचकित थे। ज्ञान का पिपासु दयानन्द, विरजानन्द की वाणी से बहती हुई सत्य ज्ञान की धारा से नित्य प्रतिदिन अपनी पिपासा को शान्त करता रहा। पाठशाला के समय के अतिरिक्त समय में यमुना तट पर नियमानुसार समाधिस्थ हो प्रभु की

उपासना करता। लगभग तीन वर्ष तक निरन्तर मथुरा में रहकर गुरु से व्याकरण निरुक्त आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। प्राचीन शास्त्रों के गूढ़ रहस्य को समझा। वैदिक ज्ञान के द्वारा अन्तर्ज्योति को प्राप्त किया व सत्य को जांचने की कसौटी प्राप्त कर ली।

विद्या समाप्ति पर विदाई मांगी। प्राचीन समय से यह प्रथा चली आई है कि शिष्य गुरु से विद्या ग्रहण करने के उपरान्त विदाई के समय श्रद्धा सामर्थ्य के अनुसार उनके चरणों में दक्षिणा अर्पित करते हैं। दयानन्द तो अकिंचन संन्यासी, वह क्या दक्षिणा देता ?

जनश्रुति के अनुसार दयानन्द विदाई के समय गुरु के पास आध सेर लौंग लेकर गए। गुरु को लौंग बहुत प्रिय थे। वे नित्य इसका सेवन करते थे। श्रद्धापूर्ण हृदय से गुरु से निवेदन किया–गुरुवर! मैं अब तक मिथ्या ज्ञान से अंधकार में था। आपने सत्यज्ञान देकर मेरा वह अंधकार दूर किया। आज मैं अपने आपको कृत–कृत्य अनुभव करता हूं। आपके उपकारों को मैं कभी भूल नहीं सकता। आपके ऋण को मैं कभी चुका नहीं सकता। मेरी यह भेंट (आध सेर लौंग) स्वीकार करने की कृपा करें। मुझे आशीर्वाद दें जिससे मैं आपके द्वारा प्राप्त ज्ञान के अनुसार आचरण कर अपने जीवन को सफल बनाऊं ।

त्यागमूर्ति दण्डी स्वामी विरजानन्द ने परमप्रिय शिष्य दयानन्द को आदेश दिया–हे दयानन्द ! तुम्हारे जैसा शिष्य होना गौरव की बात है। तुम्हारे मन में सच्ची ज्ञान–पिपासा थी। तुमने जिस निमित्त से पैतृक वैभव को त्याग, विषय वासनाओं पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन व्यतीत किया, सभी प्रकार के कष्टों को सहन करते हुए धैर्य का अवलम्बन करते हुए हिमाच्छादित पर्वतों और हिंसक जंतुओं से पूर्ण कण्टकाकीर्ण वनों का अवगाहन किया, आज वह तुम्हारा उद्देश्य पूर्ण हुआ। तुम्हारी तपस्या सफल हुई। इस विदाई के समय मुझे संतोष है कि एक शिष्य मुझे ऐसा मिला जिस पर मैं भरोसा कर सकता हूं। तुमने ये लौंग मेरे आगे दक्षिणा के तौर पर रखे हैं। परन्तु मैं तो तुम से कुछ और ही दक्षिणा चाहता हूं। वह दक्षिणा बहुमूल्य है। प्रत्येक शिष्य उसे नहीं दे सकता। वैभवशाली शिष्य में ही उस दक्षिणा को देने की सामर्थ्य है।

दयानन्द अपने लक्ष्य का कुछ भी ध्यान न कर शान्तचित्त गुरुचरणों में नतमस्तक होकर बोले–गुरुवर ! जो कुछ मेरे पास है वह सब आपका है। मेरा अपना कुछ नहीं। आप आज्ञा प्रदान करें। मैं आपकी आज्ञा का यथाशक्ति पालन करूंगा।

गुरु विरजानन्द बोले– मुझे तुम्हारा जीवन चाहिए। दयानन्द ने कहा– यह शरीर आपका है। आप इससे जो काम लेना चाहें वह ले सकते हैं। आज से मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

गुरु विरजानन्द ने शिष्य को आशीर्वाद देते हुए निवेदन किया–हे दयानन्द ! मैं तुमसे एक ही दक्षिणा चाहता हूं, ध्यान से सुनो और वह दक्षिणा देने का संकल्प करो। मैंने आज तक जिन ऋषिकृत ग्रन्थों के आधार पर तुम्हें सत्यज्ञान दिया है उसका प्रचार समस्त जनसमुदाय में करो। जो प्रकाश तुमने इन ऋषि वचनों द्वारा प्राप्त किया है उसका प्रकाश संसार में फैलाओ। भ्रान्तिपूर्ण ग्रन्थों का अध्ययन कर अंधकार में भटकते हुए प्राणियों के अन्धकार को दूर करो। ज्ञान के पिपासु आर्तजनों को सत्यज्ञान देकर उनका कल्याण करो। निरीह जनों को धर्म के ठेकेदारों द्वारा ठगा जा रहा है, उन्हें बचाओ। सत्य वैदिक ज्ञान लोप हो रहा है उसे प्रसारित करो और लोगों को आत्म ज्ञान देकर उनका आत्म बल बढ़ाओ। वे धर्म और आस्था के नाम पर हो रहे शोषण से बच सकें, कर्म के महत्व को जान सकें। सत्य ज्ञान को प्राप्त कर गौरव पूर्ण जीनव से इस राष्ट्र का भी उत्थान कर सकें। इसकी सदियों की पराधीनता को दूर कर सकें। यही मेरा आदेश है। यही मेरी दक्षिणा है। ईश्वर तुम्हें शक्ति दे। तुम अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करो।

दयानन्द सरस्वती ने गुरु के समक्ष संकल्प किया कि वे उनकी आज्ञा का यथावत् पालन करेंगे। इसके अनुसार उनके आशीर्वाद प्राप्त कर मथुरा से नवजीवन में प्रवेश कर राष्ट्रोद्धार के लिए निकल पड़े।

अध्याय दो

प्रारम्भिक प्रचार कार्य

मथुरा से प्रस्थान कर दयानन्द आगरा आए। यह सं० १९२० वि०(ई० सन 1863) की घटना है। यहाँ वे यमुना के तीर पर गल्लामल रूपचन्द अग्रवाल के उद्यान में ठहरे। दण्डी स्वामी विरजानन्द से तीन वर्ष तक अध्ययन करने के बाद अब उसका मनन और निदिध्यासन करने की आवश्यकता थी। अत: उनकी विचारधारा धीरे-धीरे परिपक्व होती चली गई और कुछ ही वर्षों में वे पूरी तरह वैदिक सिद्धान्तों पर निश्चित हो गये। आगरा में रहते हुए दयानन्द सरस्वती योग क्रियाओं का अभ्यास करते हुए नित्य नियमानुसार समाधिस्थ रहते थे। कुछ समय गीता की कथा करते। भक्तजनों को गायत्री का जाप तथा संन्ध्योपासना का उपदेश देते रहते थे। संध्या की तीस हजार पुस्तकें प्रकाशित करवाकर उनका वितरण करवाया।

आगरा में श्री सुन्दरलाल इनके विशेष भक्तों में से थे। सुन्दरलाल जी दयानन्द सरस्वती से अष्टाध्यायी तथा गीता का अध्ययन करते थे। यद्यपि दयानन्द सरस्वती इन दिनों मूर्तिपूजा नहीं करते थे, इससे बाल्यकाल से ही विरक्त हो चुके थे, तो भी उनका झुकाव शैवमत की ओर था। भागवत् और चक्रांकित मत के वे कट्टर विरोधी थे।

दो वर्ष तक आगरा निवास करके स्वामीजी ग्वालियर पधारे। ग्वालियर में वहाँ के महाराज ने इन दिनों भागवत सप्ताह का आयोजन किया था। दूर-दूर से पण्डितों को आमन्त्रित किया था। दयानन्द सरस्वती से भी इस विषय में सम्मति मांगी। स्वामीजी ने निर्भिकता से कहलवा दिया-'इस प्रकार के कार्य के फल कष्ट क्लेश से भिन्न कुछ नहीं हुआ करते। विश्वास न हो तो देख लो।'

इन शब्दों के साथ उन्होंने महाराज के इस समारोह में उपस्थित होना स्वीकार नहीं किया, साथ ही परामर्श दिया कि आप भागवत पाठ के स्थान पर गायत्री पुरश्चरण कीजिये। भागवत सप्ताह की तो तैयारी हो चुकी थी। वह समारोह के साथ मनाया गया। दयानन्द सरस्वती ने भी भागवत के खण्डन पर अपनी व्याख्यानमाला शुरू कर दी ।

संयोग देखिये कि भागवत सप्ताह के तुरन्त बाद महारानी का पाँच मास का

गर्भ गिर गया। उसी मास उस नगर में विषूचिका रोग (हैजा) फैल गया। जिस उद्देश्य से पाठ रखा गया था, उसके विपरीत परिणाम दृष्टिगोचर हुए।

ग्वालियर से प्रस्थान कर करोली होते हुए दयानन्द सरस्वती सं० १९२२ वि०(ई० सन 1865) में जयपुर पधारे। यहाँ आपने रामकुमार और नन्दराम मोदी की वाटिका में निवास किया। यहां निवास करते हुए भक्तजनों की जीव व ईश्वर के स्वरूप के विषय में शंकाओं का समाधान करते रहे। गायत्री जाप के लिए सबको प्रेरणा देते रहे। कभी-कभी पण्डितों के साथ शास्त्र चर्चा भी होती रही।

इन दिनों जयपुर में शैव और वैष्णव सम्प्रदाय के पण्डितों का संघर्ष चल रहा था। जयपुर के महाराज का झुकाव शैव सम्प्रदाय की ओर था। दयानन्द सरस्वती यद्यपि मूर्तिपूजा को हेय समझते थे, तथापि उनका झुकाव शैवमत की ओर अधिक था।

वैष्णवों के प्रमुख पण्डित हरिश्चन्द्रजी तथा दयानन्द सरस्वती का शास्त्रार्थ हुआ। दयानन्द सरस्वती ने वैष्णव मत का खण्डन किया। चक्रांकितों में प्रचलित दुराचार लीला किस प्रकार जनसमुदाय को अधोगति की ओर ले जा रही है इस पर विस्तार से प्रकाश डाला। इस विषय में उन्होंने स्वयं आत्मचरित्र में लिखा है-"वहाँ मैंने प्रथम वैष्णव मत का खण्डन करके शैवमत की स्थापना की। जयपुर के महाराजा राम सिंह ने भी शैवमत को ग्रहण किया। इससे शैवमत का फैलाव होकर सहस्रों रुद्राक्षमालाएं मैंने अपने हाथ से बाँटीं। वहां शैवमत इतना पक्का हुआ कि हाथी घोड़े आदि के गलों में भी रुद्राक्ष पड़ गई।"

जयपुर से दयानन्द सरस्वती पुष्कर और पुष्कर से अजमेर पधारे। पुष्कर और अजमेर में भी वैष्णव मत का खण्डन किया। यहीं से उन्होंने शैवमत का भी खण्डन प्रारम्भ किया क्योंकि वे समझते थे कि सभी मूर्तिपूजक धर्म मनुष्य जाति को अधः पतन की ओर ले जाने वाले हैं। ईश्वर एक व निराकर है- उसकी मूर्ति बनाकर पूजना अपने आपको अन्धकार में रखना है। अजमेर में स्वामीजी का मुसलमान मौलवी और ईसाई पादरियों से भी शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ के विषय ईश्वर, जीव, सृष्टिक्रम तथा पुनर्जन्म आदि थे। इस प्रकार स्वामी दयानन्द वेदमत को स्थापित करने में लग गये।

अजमेर में दयानन्द सरस्वती का भारत के तत्कालीन गवर्नर-जनरल के

एजेण्ट कर्नल ब्रुक से गोरक्षा विषय में वार्तालाप हुआ। स्वामीजी ने उन्हें मनुष्य समाज के लिए गाय की उपयोगिता का प्रतिपादन किया। उन्होंने कर्नल ब्रुक को गोहत्या को कानून बना कर बन्द करने की सलाह दी। कर्नल ब्रुक उनके वार्तालाप से प्रभावित हुए। उन्होंने स्वामीजी को एक पत्र गवर्नर जनरल के नाम दिया, जिससे वे गवर्नर जनरल से मिलकर उनके समक्ष अपने विचार रख सकें।

अजमेर से किशनगढ़, जयपुर, आगरा होते हुए पुनः मथुरा पहुँचे। मथुरा में गुरु विरजानन्द जी दण्डी की सेवा में उपस्थित हुए। उन्हें दो अशरफी तथा एक मलमल का थान भेंट किया। अपनी लिखी एक लघु पुस्तिका, जिस में वैष्णव मत का खण्डन किया गया था, गुरुजी को दिखाई। गुरु जी से मिलने पर अपनी शंकाओं का निवारण कर मेरठ होते हुए हरिद्वार पहुँचे।

पाखण्ड-खण्डिनी-पताका

फाल्गुन शुल्क प्रतिपदा सं० १९२३ वि० तदनुसार १२ मार्च सन् १८६७ को दयानन्द सरस्वती हरिद्वार आए। यहाँ एक मास बाद हरिद्वार का प्रसिद्ध कुम्भ मेला होना था। इस अवसर पर हरिद्वार में भारत के सभी प्रान्तों से साधु महात्मा मेले से एक दो मास पूर्व ही आना शुरू कर देते हैं। कथा-कीर्तन-सत्संग सब होता है। अपने-अपने मतों का प्रचार करते हैं। अपनी-अपनी वाणी से लोगों को प्रभावित करते हैं। भक्तजन लाखों की संख्या में संतों के दर्शन तथा पापविमोचन की आशा लिए आते हैं। सेठ साहूकार जगह जगह भोजन के भण्डारे खोल देते हैं। इस प्रकार इस अवसर पर सभी शास्त्रों के प्रवचन में पटु पण्डित साधु सन्त अपने वाग् विलास द्वारा तथा अर्थपति खुले हाथ दान द्वारा यशोलाभ करते हैं। भक्तजन सन्तों के दर्शन और उपदेशों के श्रवण द्वारा अपने अशान्त मन को कुछ क्षणों के लिए परम शान्ति में अनुभव करते हैं। चैत्र वैशाख के महीनों में गंगा के स्वच्छ और शीतल सलिल में स्नान करने के बाद सभी समागत जन विकारमय विचार तरङ्गों से अल्पकालिक मुक्ति का अनुभव करते हैं।

इस अवसर पर हरिद्वार में वैदिक धर्म का प्रचार और आधुनिक मत-मतान्तरों में प्रचलित पाखण्डों का खण्डन करने के लिए हरिद्वार से तीन मील परे ऋषिकेश के मार्ग पर सप्त सरोवर नामक सुन्दर स्थान पर आठ-दश छप्परों की

कुटियाँ डलवाकर अपना डेरा लगाया। यहीं एक पताका गाड़ दी, जिस पर लिखा था–"पाखण्ड–खण्डिनी–पताका।"

उँचा कद, लालिमा की छवि के साथ गौर वर्ण, तेजस्वी मुखमण्डल, उन्नतवक्ष, संगठित माँसपेशियाँ गेरुए वस्त्र धारण किये इस बाल ब्रह्मचारी संन्यासी का आकर्षक स्वरूप देखकर सभी दर्शक जन उनके चरणों में नत मस्तक हो जाते थे। वेद मन्त्रों का उच्च स्वर से गान करते हुए एक ईश्वर का प्रतिपादन, उसके निराकर सच्चिदानन्द स्वरूप का वर्णन, मूर्तिपूजन (जड़पूजा) का खण्डन सुनकर सभी श्रोतागण मुग्ध हो जाते थे और अदभुत आर्कषण पैदा करते थे।

गुरु विरजानन्द ने जिस विद्या के स्रोत की यहाँ स्थापना की थी वह आज इस संन्यासी की ओजस्विनी वाणी के द्वारा सुनने वालों की बुद्धियों में चिरकाल से जमे हुए मिथ्याज्ञान के कुसंस्कारों को सत्य ज्ञान की ओर प्रवाहित हो रहा था।

मूर्तिपूजा के खण्डन के साथ दयानन्द सरस्वती ने मृतकश्राद्ध, अवतारवाद, जन्म से वर्णव्यवस्था आदि को वेदविरुद्ध सिद्ध किया। पुराणों को कपोलकल्पित प्रतिपादित किया। भक्तजनों को समझाया कि **शुभ कर्मों से ही मनुष्य उन्नति को प्राप्त कर सकता है और मोक्ष तक को प्राप्त कर सकता है।** पापाचरण करते हुए पर्वों के अवसर पर गंगा स्नानादि से पाप का विमोचन नहीं हो सकता। इस प्रकार स्नान से मोक्ष प्राप्ति की कल्पना सर्वथा अज्ञानमूलक है। **बुद्धि और तर्क के विरूद्ध स्थापित मान्यताएं कभी भी धर्म का आधार नहीं हो सकती।**

इन दिनों दादूपन्थी स्वामी महानन्द हरिद्वार में निवास करते थे। उन्होंने जीवन में सर्वप्रथम दयानन्द सरस्वती के पास वेदों के दर्शन किए । वे संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। स्वामीजी के उपदेशों से उनके भक्त बनकर उन के सिद्धान्तों के प्रचारक बन गए। इनके नाम से आर्यसमाज देहरादून में "महानन्द पुस्तकालय" की स्थापना की गई।

काशी के प्रसिद्ध विद्वान् स्वामी विशुद्धानन्दजी के साथ भी यहाँ दयानन्द सरस्वती का वर्णाश्रम व्यवस्था के सम्बन्ध में एक वेद मन्त्र को लेकर कुछ वार्तालाप हुआ। स्वामी विशुद्धानन्द जी ने वेदमन्त्र द्वारा ईश्वर द्वारा निर्धारित जन्ममूलक वर्णव्यवस्था को सिद्ध करना चाहा। स्वामीजी ने उसी वेदमन्त्र से वर्णव्यवस्था

गुणकर्मानुसार सिद्ध की। वेद के नाम पर अविद्यामूलक सिद्धान्तों के प्रचार में सभी साधु-संन्यासी और सत्य का प्रचारक एक दयानन्द। लोगों पर प्रभाव पड़ना इतना सरल नहीं था लेकिन उस सत्य के ग्राही ने हार नहीं मानी।

हरिद्वार में कुम्भ के मेले के समय साधुओं के वैभव और आडम्बर के साथ विलासमय जीवन को देखकर दयानन्द सरस्वती के मन में उसके प्रति वैराग्य की भावना उत्पन्न हुई, यद्यपि उनके पास कुछ न था, पर जो वस्त्र, पुस्तकें तथा थोड़ा बहुत धन था उसे भी त्यागने की भावना उत्पन्न हुई। उसी समय सब कुछ त्याग दिया। महाभाष्य की पुस्तक, पैंतीस रुपये और एक मलमल का थान गुरु विरजानन्द जी को मथुरा भेजा। इसके अतिरिक्त जो कुछ था वह वहीं बांटकर कौपीनधारी बन गए। कुछ दिन मौन धारण किया, परन्तु चारों ओर पाखण्ड का प्रचार देखकर अधिक समय मौन का अवलम्बन न कर सके। पाखण्ड का खण्डन व सत्य का प्रचार करते हुए दयानन्द सरस्वती सप्त सरोवर से ऋषिकेश की ओर चल पड़े। पांच छः दिन ऋषिकेश रहकर पुनः हरिद्वार कनखल होते हुए गंगा किनारे पर प्रचार यात्रा के लिए प्रस्थान किया।

गंगा-तट पर प्रचार कार्य

हरिद्वार से गंगा तीर पर प्रचार यात्रा में जहाँ भी जाते, वहाँ की जनता बहुत अधिक संख्या में इस योगी का दर्शन करने और प्रवचन सुनने के लिए एकत्रित हो जाती।

हरिद्वार और कनखल से दयानन्द सरस्वती लण्ढोरा, मुहम्मदपुर, परीक्षितगढ़, कर्णवास होते हुए फर्रूखाबाद आए। यहाँ भक्तजनों का शङ्का समाधान करते हुए उन्हें अविद्या, अन्धविश्वास व धर्म के नाम पर हो रहे पाखण्ड से बचाते हुए सन्ध्या व गायत्री मन्त्र का जाप करने के लिए प्रेरित करते रहे।

फर्रूखाबाद से अनूपशहर आए। यहाँ भी उपरोक्त प्रक्रिया को जारी रखते हुए जनसमुदाय को उपदेश देते रहे।

अनूपशहर से चासी आए। यहाँ नन्दराम नामक ब्राह्मण चक्राङ्कित सम्प्रदाय का प्रचार करता था। दयानन्द सरस्वती के आगमन का समाचार सुनकर वहाँ के निवासी कुछ ब्राह्मण और जाट नन्दराम को लेकर स्वामीजी के पास गए, पर नन्दराम उनसे शास्त्रचर्चा न कर सका। चुपचाप गङ्गा पार अहार गांव चला गया। उसका

पलायन देखकर वहाँ की जनता का चक्रङ्कित मत में दीक्षित होना बन्द हो गया।

चासी से दयानन्द सरस्वती थारपुर और रामघाट होते हुए पुनः कर्णवास आए। रामघाट में टीकाराम नामक ब्राह्मण को स्वामीजी के साथ शास्त्रचर्चा करने पर सत्य का बोध हुआ और मूर्तिपूजा से विश्वास उठ गया। उसने अपनी देवमूर्तियाँ गंगा में प्रवाहित कर दीं।

कर्णवास में दयानन्द सरस्वती मूर्तिपूजा के खण्डन के साथ कण्ठी तिलक आदि का भी खण्डन करते रहे। यहाँ आश्विन में गंगा स्नान के लिए भारी मेला लगता था। मेले के अवसर पर स्वामीजी के प्रभावशाली भाषणों से स्वार्थी जनों में आंतक फैल गया। उन्होंने अनूप शहर से एक संस्कृतज्ञ पण्डित अम्बादत्त जी पर्वतीय को बुलवाया। अम्बादत्त जी पर्वतीय का मूर्तिपूजा विषय पर दयानन्द सरस्वती के साथ शास्त्रार्थ हुआ। अन्त में पर्वतीयजी ने दयानन्द सरस्वती से सहमत होते हुए मूर्तिपूजा को वेद विरुद्ध माना और इस बात की जनता में घोषणा की।

कर्णवास से प्रस्थान कर अहार, चासी, जहांगीराबाद और बेलोन गए। इन स्थानों पर जनता को नित्य नियमानुसार संध्या करने, गायत्री मन्त्र और ओम् का जप करने का उपदेश देते रहे। मूर्तिपूजा को वेदविरुद्ध प्रतिपादित करते रहे और सत्य सनातन वैदिक मत की ओर लोगों को आकर्षित करते रहे।

बेलोन से पुनः कर्णवास पधारे। इस बार वहाँ की जनता ने अनूपशहर से पं० हीरावल्लभ को दयानन्द सरस्वती के साथ मूर्तिपूजा विषय पर शास्त्रार्थ करने के लिए बुलाया। पं० हीरावल्लभ पूरी तैयारी के साथ आए। अपने साथ देवमूर्तियों को एक सिंहासन पर सजाकर लाए और घोषणा की कि मैं दयानन्द सरस्वती के हाथ से इन मूर्तियों को भोग लगवाकर ही उठूंगा। छः दिन तक शास्त्रार्थ चलता रहा। सहस्रों की संख्या में जनता उत्सुकता के साथ दोनों ओर के युक्ति-प्रमाण सुनती रही। दयानन्द सरस्वती के तेजस्वी मुख मण्डल और ओजस्विनी वाणी का चत्मकार देखकर सभी मुग्ध थे। स्वयं पं० हीरावल्लभ भी उनके धाराप्रवाह संस्कृत में भाषण, तर्कशैली और वेदवेदाङ्गों की कण्ठाग्र उपस्थिति को देखकर आश्चर्यचकित थे। अन्त में पं० हीरावल्लभ ने दो सहस्र उपस्थितजनों के मध्य अपनी पराजय स्वीकार की। दयानन्द सरस्वती को करबद्ध प्रणाम किया। सजी हुई देवमूर्तियों को गंगा में प्रवाहित किया

और इस प्रकार सत्य को स्वीकार किया।

दयानन्द सरस्वती भी पं० हीरावल्लभ के धैर्य और न्यायप्रियता को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। कर्णवास तथा पड़ौस के गाँवों में इस शास्त्रार्थ की चर्चा तेजी के साथ फैल गई। दयानन्द सरस्वती के प्रति जनसाधारण की श्रद्धा बहुत बढ़ गई। स्वामीजी ने श्रद्धालु भक्तों को यज्ञोपवीत धारण कराए। संध्या व गायत्री मन्त्र की दीक्षा दी। एक निराकर ईश्वर की उपासना का उपदेश दिया और उसके नाम पर हो रहे शोषण से लोगों को बचाते रहे।

यहाँ एक नवमुस्लिम ने दयानन्द सरस्वती से पूछा कि महाराज! क्या हम भी शुद्ध होकर आपके धर्मानुयायी बन सकते हैं? स्वामीजी ने कहा–**धर्मानुसार आचरण करोगे तो अवश्य शुद्ध हो सकते हो।** यहाँ स्वामी जी ने धर्म को सीधा–सीधा मनुष्य के आचरण से जोड़ दिया और शुद्धिकरण का सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

माघ कृष्ण १५ सं० १९२४ वि० सूर्यग्रहण के अवसर पर गंगा के स्नान के निमित्त हुए जन समुदाय को बताया कि यह ग्रहण तो एक प्राकृतिक घटना है। इस अवसर पर ग्रहण के अनन्तर ही स्नान करना तथा ग्रहणकाल में भूखा रहना आदि सब मिथ्याजाल है और इस प्रकार लोगों को हर अवसर पर पाखण्ड से बचा कर ठीक–ठीक सिद्धान्त समझाये कि कर्म–काण्ड विज्ञान सम्मत होने चाहिएं तभी वे धर्म और सत्य पर आधारित होते हैं। **अतः धर्म और विज्ञान का कोई विरोध नहीं है।**

कर्णवास से सं० १९२५ वि० चैत्र मास में दयानन्द सरस्वती एटा जिले के 'सोरों' नगर में पहुँचे। यह भी उस समय के पौराणिकों का गढ़ था। चक्रांकित सम्प्रदाय का अधिक प्रचार था। यहाँ दस हजार ब्राह्मण रहते थे। ये सब चक्रांकितों के जाल में फंसे हुए मूर्तिपूजा में श्रद्धा रखने वाले थे।

दयानन्द सरस्वती सोरों के पास ही नगर के बाहर गढ़िया घाट में ठहरे। सोरों के प्रतिष्ठित नागरिक गोसाईं बलदेव गिरि ने स्वामीजी की ख्याति सुन रखी थी। वे अपने साथ कुछ पण्डितों को लेकर स्वामीजी के दर्शन के निमित्त उनके पास गए और शास्त्र–चर्चा के उपरान्त स्वामीजी के विचारों से प्रभावित होकर उनके भक्त बन गए। प्रतिदिन भक्तिभाव से अपने स्थान से उनके लिए भोजन आदि भेजने लगे। कुछ दिनों

के बाद उन्हें सोरों नगर के अंदर अपने निवास स्थान अम्बागढ़ में ले आए। वहीं उनके रहने का प्रबन्ध किया।

सोरों के पास बदरिया नामक एक ग्राम है। यहाँ अङ्गद शास्त्री एक विद्वान् पण्डित रहते थे। इन्होंने स्वामी विरजानन्द जी से भी कुछ समय व्याकरण का अध्ययन किया था। शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता थे। एक दिन वे दयानन्द सरस्वती से मिलने आए। स्वामीजी के साथ मूर्तिपूजा और भागवत के विषय में भी विचार-विमर्श हुआ। अङ्गद शास्त्री स्वामीजी के शास्त्रीय प्रवचन और युक्तिवाद से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपनी देवमूर्तियां गंगा में प्रवाहित कर दी और भागवत की कथा न करने की प्रतिज्ञा करली।

सं० १९२५ वि० ज्येष्ठ मास में दयानन्द सरस्वती सोरों से पुनः कर्णवास पधारे। स्वामीजी पहले की तरह ओजस्वी नाद करते हुए वेदविरुद्ध प्रथाओं का खण्डन करने लगे। कर्णवास में ज्येष्ठ शुक्ला दस को पड़ौस के गांवों से सहस्रों की संख्या में नरनारी स्नान करने आते हैं। इस अवसर पर पास के एक गांव बरौली से राव कर्ण सिंह भी कर्णवास आए। ये जाति के बढ़ गूजर क्षत्रिय थे। वृन्दावन में चक्रांकित सम्प्रदाय के धर्मगुरु रङ्गाचार्य के शिष्य थे। चक्रङ्कितों का तिलक छाप लगाते थे।

एक दिन दयानन्द सरस्वती भक्तजनों को वेदोपदेश दे रहे थे। उनकी शङ्काओं का समाधान कर रहे थे। राव कर्णसिंह भी उनके उपदेश स्थल पर आए। अपने साथ तलवार हाथ में लिए अनुचरों को भी ले आए। राव कर्णसिंह अभिमानी तथा उग्र स्वभाव के व्यक्ति थे। दयानन्द सरस्वती चक्राङ्कित सम्प्रदाय का खण्डन करते थे। राव कर्णसिंह इस सम्प्रदाय के अंधभक्त थे।

दयानन्द सरस्वती ने आते ही इन्हें आग्रहपूर्वक बैठने के लिए कहा, पर राव कर्णसिंह तो किसी और ही उद्देश्य से आये थे। आते ही उद्दण्डता के साथ बोले-हम तो वहीं बैठेंगे जहाँ आप बैठे हैं। स्वामीजी जिस शीतल पाटी पर बैठे थे उन्होंने उसका आधा भाग खाली कर दिया। राव कर्णसिंह उनके साथ शीतल पाटी पर बैठ गए। बैठने के उपरान्त स्वामीजी से प्रश्न किया-क्या आप गङ्गाजी को मानते हैं ?

स्वामीजी-गङ्गा जितनी है उतनी ही मानते हैं।

कर्णसिंह-गङ्गा कितनी है?

स्वामीजी—हमारे लिए तो गङ्गा कमण्डलुभर ही है।

इस पर राव कर्णसिंह ने गङ्गास्तोत्र के कुछ श्लोक पढ़े।

स्वामीजी—यह तो तुम्हारी गप्प है। गङ्गाजल केवल स्नान व पीने का पानी है। इसके स्नान व पान से मोक्ष नहीं होता। मोक्ष तो मनुष्य के अपने किये कर्मों द्वारा ही प्राप्त होता है।

कर्णसिंह—हमारे यहां रामलीला होती है। चलिए तो हम आपको रामलीला दिखाएँ।

स्वामीजी—क्षत्रिय पुरुषों को महापुरुषों के स्वांग बनाकर नचाना कहां तक शोभा देता है? यदि कोई तुम्हारे पूर्व पुरुषों का इस प्रकार स्वांग बनाकर नाच कराए तो कितना बुरा लगेगा? (कर्णसिंह के ललाट पर चक्राङ्कितों का तिलक देख कर) तुम क्षत्रिय हो। तुमने अपने ललाट पर यह भिखारियों का तिलक क्यों लगाया है? भुजाओं को दग्धकर यह छाप किस निमित्त बनाया है।

कर्णसिंह—यह हमारा धार्मिक चिह्न है। इस पर कोई आक्षेप किया तो आपको उसका बुरा परिणाम भोगना पड़ेगा। हमारे गुरु स्वामी रङ्गाचार्य के साथ आप बात भी न कर सकेंगे। आप उनके सामने कुछ नहीं हैं।

स्वामीजी (मुस्कराते हुए)—तुम अपने गुरु को शास्त्रार्थ के लिए यहां बुलवा लो। यदि वे नहीं आ सकते तो मैं वहां चल कर शास्त्रार्थ करने को तैयार हूं।

इस पर राव कर्णसिंह क्रोध के आवेश में बड़बड़ाता रहा। दयानन्द सरस्वती धीरतापूर्वक निर्भय चित्त से चक्राङ्कित सम्प्रदाय के मत का खण्डन करते रहे। राव कर्णसिंह इसे सहन न कर सका। उसने तलवार म्यान से निकाली। स्वामीजी ने शांत प्रहसन के साथ उसकी तलवार छीनकर उसके दो टुकड़े कर दिये।

राव कर्णसिंह का एक पहलवान अनुचर आगे बढ़कर दयानन्द सरस्वती पर हाथ चलाने लगा, पर उस निर्भय वीर दयानन्द सरस्वती ने एक झटके से पहलवान को दूर फेंक दिया। सिंह गर्जन के साथ राव कर्णसिंह से बोले—धूर्त! यदि तुम्हें लड़ना है तो किसी वीर क्षत्रिय राजपूत के साथ जाकर लड़ो और शास्त्रार्थ करना है तो अपने गुरु रङ्गाचार्य को वृन्दावन से बुलाकर सभास्थल पर खड़ा कर दो।

इतने में श्रोताजनों में से ठाकुर किशनसिंह आदि राजपूत लट्ठ लेकर खड़े हो

गए। कायर कर्णसिंह अनुचरों समेत चला गया।

कुछ लोगों ने दयानन्द सरस्वती से इस घटना की थाने में सूचना देने का आग्रह किया, पर उस दयालु संन्यासी ने उत्तर दिया कि यदि वह अपने क्षत्रियत्व को पूरा न कर सका तो हम अपने संन्यास धर्म से क्यों पतित हो जाएं? क्षमा और संतोष हमारा परम धर्म है ।

शरत् पूर्णिमा के अवसर पर राव कर्णसिंह फिर गङ्गास्नान के निमित्त कर्णवास आए। दयानन्द सरस्वती कर्णवास में रहते हुए वेदविरुद्ध मतों और पाखण्डपूर्ण प्रथाओं का खण्डन कर रहे थे। राव कर्णसिंह के मन में अपने पिछले अपमान का बदला लेने की भावना उठी। उसने वैरागियों को लोभ देकर स्वामी जी को मारने के लिये उकसाया। मुकदमे में जो कुछ भी व्यय होगा वह भी वहन करके उनकी पूर्ण रक्षा का आश्वासन दिया। पर किसी को साहस न हुआ। अंत में अपने पहलवान अनुचरों को इस काम के लिए आज्ञा देकर दयानन्द सरस्वती की कुटिया पर भेजा।

दयानन्द सरस्वती एकमात्र कौपीन के अतिरिक्त कोई वस्त्र न धारण करते थे। रात्रि को शीत के समय पूल डालकर सो जाया करते थे। भक्तजन उन्हें सोते हुए पाकर ऊपर कम्बल डाल दिया करते थे। कैथलसिंह नामक व्यक्ति उनके पास रहता था।

एक दिन रात्रि के मध्य भाग में राव कर्णसिंह के भेजे हुए तीन पहलवान सेवक तलवार लेकर दयानन्द सरस्वती की कुटिया पर आए। स्वामीजी और कैथलसिंह दोनों सो रहे थे। पहलवानों के आने का खटका सुनकर स्वामीजी जाग उठे। पहलवान भयभीत होकर भाग गए। दुबारा फिर कर्णसिंह ने उन्हें क्रोध भरे शब्दों में धमकाकर भेजा। ज्यों ही वे स्वामीजी की कुटिया पर पहुँचे स्वामीजी ने जोर से हुंकार करते हुए पूछा–कौन है! तीनों पहलवान घबड़ाकर गिर पड़े।

तलवारें हाथ से छूट गई। स्वामीजी की हुँकार सुनकर कैथलसिंह भी जाग गया।

कैथलसिंह ने सारा वृत्तान्त स्वामीजी के भक्त ठाकुर किशनसिंह तथा अन्य क्षत्रिय राजपूतों को सुनाया। सभी भक्तजन स्वामीजी की कुटिया पर पहुंचे। स्वामीजी

ने सब को समझाया कि देखो! ईश्वर–विश्वासी का कोई क्रूर पुरुष कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। तुम किसी प्रकार की उत्तेजना में मत आओ। उस भीरु कायर पुरुष ने जो कुछ उसकी समझ में आया, किया। हमारा धर्म क्षमा करना ही है। यदि दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता तो हम अपनी साधुता को क्यों छोड़ें? तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो।

भक्तजनों को संतोष न हुआ। वे सीधे राव कर्णसिंह के डेरे पर पहुँचे। उसे ललकार कर कहा–ऐ कायर राजपूत! यदि तू अपना भला चाहता है तो इसी क्षण कर्णवास को छोड़ कर भाग जा, नहीं तो यहीं तुम्हारे सब शस्त्र छीनकर ऐसी पिटाई करेंगे कि जीवन भर याद रखोगे। तुम्हारी सब मान मर्यादा समाप्त हो जाएगी।

कर्णवास निवासी उसके श्वसुर ठाकुर मोहनसिंह ने भी उसे समझाया कि तुम्हारा कल्याण अब यहां से भाग जाने में ही है। कर्णसिंह अन्तःभीरु तो था ही। वह उसी समय कर्णवास छोड़कर अपने गांव चला गया।

इस घटना के बाद कुछ दिन कर्णवास में निवासकर दयानन्द सरस्वती अम्बागढ़, शहबाजपुर, कायमगंज आदि नगरों में होते हुए पौष सं० १९२५ विक्रमी (सन् 1869) में फर्रूखाबाद पधारे।

इस बार फर्रूखाबाद में दयानन्द सरस्वती ने अपने भक्तजनों को यज्ञोपवीत धारण कराए। संध्या, अग्निहोत्र आदि नित्य कर्मों की ओर प्रेरित किया। अपने एक भक्त ला० जगन्नाथ के सुपुत्र का शास्त्रविधि से नामकरण संस्कार कराया। मूर्तिपूजा का समय–समय पर जोरदार खण्डन करते रहे। मूर्तिपूजा के समर्थकों ने मेरठ से पं० श्रीगोपाल और कानपुर से पं० हलधर ओझा को बुलवाकर दयानन्द सरस्वती से शास्त्रार्थ कराया, परन्तु दोनों पण्डितों को पराजित होना पड़ा।

यहीं रहते हुए स्वामीजी ने जर्मनी से चारों वेद मंगवाए। यहाँ एक सस्कृत की पाठशाला की स्थापना की।

फर्रूखाबाद में इन दिनों कुछ युवक ईसाई धर्म में प्रवेश करना चाहते थे। स्वामीजी ने इन्हें ईसाई धर्म के दोष और वैदिक धर्म का सच्चा स्वरूप बताकर अपने धर्म में रहने के लिए उत्साहित तथा तत्पर किया।

आठ गप्प और आठ सत्य

फर्रूखाबाद से दयानन्द सरस्वती शृङ्गीरामपुर, जलालाबाद कन्नौज होते हुए वर्षाकाल में कानपुर पहुँचे। कानपुर में दरगाहीलाल वकील के घाट पर ठहरे। स्वामीजी के आते ही नगर में हलचल मच गई। जिज्ञासु दर्शकों का उनके पास आना-जाना शुरू हो गया। स्वामीजी ने एक विज्ञापन संस्कृत में छपाकर बंटवाया। इस में आठ मिथ्यावादों (गप्पों) और आठ सत्यों को प्रचारित किया।

आठ गप्प (गप्पाष्टक)-मिथ्यावाद

१. सब मनुष्यकृत ग्रन्थ–ब्रह्मवैवर्त आदि पुराण

२. देवता बुद्धि से पाषाण आदि की पूजा

३. शैव, शाक्त, वैष्णव गाणपत्य आदि सम्प्रदाय

४. तन्त्रग्रन्थोक्त वाममार्ग

५. भांग आदि मादक द्रव्यों का सेवन

६. परस्त्री गमन

७. चोरी

८. छल कपट, अभिमान और मिथ्याभाषण

आठ सत्य (सत्याष्टक) –

१. ईश्वरकृत ऋग्वेदादि चार वेद और अन्य सत्रह ऋषिकृत ग्रन्थ

२. ब्रह्मचर्य आश्रम में रहते हुए गुरुओं की सेवा, अपने धर्म का विधिवत् अनुष्ठान करते हुए वेदाध्ययन

३. वेद प्रतिपादित वर्णाश्रम धर्म का पालन, सन्ध्योपासना, अग्निहोत्र आदि का अनुष्ठान

४. पञ्च महायज्ञों तथा श्रुतिस्मृति प्रतिपादित कर्मों का अनुष्ठान, ऋतुकाल में ही अपनी पत्नी से सहवास

५. शम, दम, तपश्चरण, यम नियम आदि आठ योग साधनों का अनुष्ठान, सत्सङ्गपूर्वक वानप्रस्थाश्रम का नियम पालन

६. विचार, वितर्क, वैराग्य, और पराविद्या का अभ्यास, संन्यास ग्रहण करके सब कर्मों के फल की इच्छा का त्याग

७. जन्म, मरण, हर्ष, शोक, काम, क्रोध, लोभ, मोह और संगदोष ये सब

अनर्थकारी हैं अतः इन का त्याग शुभ है

८. अविद्या, अस्मिता, रागद्वेष, अभिनिवेश रूप क्लेशों से निवृत्ति पाकर, पंच महाभूतों से अतीत होकर मोक्ष के स्वरूप और स्वराज्य को प्राप्त करना परम लक्ष्य है।

अर्थात् **स्वामी जी ने उसी समय स्वराज्य की प्राप्ति को लोगों के लिए लक्ष्य निर्धारित कर दिया था।**

इसके साथ ही स्वामी जी ने वेद विरुद्ध मान्यताओं को सीधी-सीधी चुनौती देना प्रारम्भ कर दिया। इससे विरोधियों के कान खड़े हो गये और स्वार्थी लोग उनके जीवन के पीछे पड़ गये।

इस विज्ञापन के प्रकाशित होते ही कानुपर के सभी नागरिकों में सनसनी फैल गई। हिन्दू धर्म में प्रचलित पाखण्डपूर्ण प्रथाओं से जिनकी धर्म-निष्ठा जा रही थी वे स्वामीजी के अमृतमय उपदेशों को सुनकर वैदिक धर्म के प्रति श्रद्धान्वित होने लगे। जिनकी आजीविका इन प्रथाओं को चालू रखने पर ही निर्भर थी उन के दिल दहलने लगे। मूर्तिपूजा में विश्वास रखने वालों में उत्तेजना फैलने लगी। उन्होंने पुनः पं० हलधर ओझा तथा उनके साथ पं० लक्ष्मण शास्त्री से दयानन्द सरस्वती के साथ शास्त्रार्थ करने के लिए आग्रह किया।

कानपुर के असिस्टैण्ट कमिश्नर थेन महोदय की मध्यस्थता में शास्त्रार्थ का आयोजन किया गया।

दयानन्द सरस्वती ने ओझाजी से कहा कि आप कोई वेद वाक्य दिखाएं, जिसमें प्रतिमा-पूजन का विधान हो।

ओझाजी—वेद में प्रतिमा-पूजन का विधान नहीं तो निषेध भी नहीं है।

दयानन्द सरस्वती—यदि विधि नहीं तो निषेध ही समझना चाहिये। यदि कोई मनुष्य अपने सेवक से पश्चिम दिशा में जाने के लिए कहे तो यह स्वतः समझ जाएगा कि वह अन्य दिशाओं में जाने का निषेध करता है। वेद में केवल एक निराकार ईश्वर की उपासना का विधान है।

इसके अनन्तर दयानन्द सरस्वती ने वेद के प्रमाणों द्वारा ईश्वर की निराकारता का प्रतिपादन करते हुए सिद्ध किया कि उसकी प्रतिमा हो ही नहीं सकती।

लक्ष्मण शास्त्री—आप ईश्वर को सर्वव्यापक मानते हैं। पाषाण में भी ईश्वर

व्यापक है। उसके पूजन में क्या दोष है?

दयानन्द सरस्वती–जब ईश्वर सर्वव्यापक है तो पत्थर में क्या विशेष गुण है जो उसकी पूजा की जाए? सर्वव्यापी चेतन को छोड़कर जड़ की पूजा में क्या भलाई है।

पं० हलधर ओझा और पं० लक्ष्मण शास्त्री ने तो मौन धारण कर लिया पर प्रधान महोदय श्री थेन ने स्वामीजी से पूछा–आप किसे मानते हैं?

दयानन्द सरस्वती–मैं केवल एक निराकार ईश्वर को मानता हूँ।

थेन– तो आप अग्नि में होम करते हुए अग्नि का पूजन क्यों करते हैं?

दयानन्द सरस्वती–हम अग्नि की पूजा नहीं करते। जो अग्नि में डाला जाता है वह सूक्ष्म होकर सर्वत्र फैल जाता है अतः उसमें वायु को शुद्ध करने वाली सुगन्धित औषधियों और घृत की आहुति देते हैं।

इसके पश्चात् थेन महोदय ने अपनी छड़ी उठाई और चल दिये। पुराणपन्थी "गङ्गामाई की जय" "हलधर ओझा की जय" के नारे लगाने लगे। बाद में जब थेन महोदय को पता लगा तो उन्होंने अपनी लिखित व्यवस्था दी–

सज्जनो! व्यवस्था के समय मैंने दयानन्द सरस्वती के पक्ष में निर्णय दिया था। मेरे विचार में उस दिन उनकी विजय हुई। यदि आप चाहते हैं तो मैं अपने इस निर्णय के पक्ष में कारणों का प्रतिपादन भी कुछ दिनों में कर दूंगा।

कानपुर ७–८–१८६९ डब्ल्यू थेन (मूल अंग्रेजी से अनूदित)

थेन महोदय के इस निर्णय की घोषणा से पं० हलधर ओझा और पं० लक्ष्मण शास्त्री तथा उनके पक्षपोषकों को नीचा देखना पड़ा। नगर में सर्वत्र दयानन्द सरस्वती के जयकार की चर्चा होने लगी। कुछ लोगों ने अपने घरों में रखी मूर्तियाँ भी गङ्गा में बहा दी।

दयानन्द सरस्वती सदा रात्रि के दो बजे बाद उठा करते थे। गङ्गा के तीर पर एकान्त स्थान में जा कर समाधिस्थ रहते थे। दिन का प्रकाश होने पर अपनी कुटिया में आकर व्यायाम आदि से निवृत्त होकर दूध का सेवन करते थे। इसके पश्चात् श्रद्धालु जनों को उपदेश देते थे। उनकी शंकाओं का समाधान करते थे। जहाँ भी जाते उनका प्रायः यही नियम रहता था।

काशी का सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ

कानपुर से प्रयाग होते हुए दयानन्द सरस्वती आश्विन सं० १९२६ को रामनगर पधारे। कुछ दिन रामनगर रहकर कार्तिक मास में काशी आ गए। यहाँ अमेठी के राजा के आनन्द बाग में डेरा लगाया।

भारतीय संस्कृति में काशी का प्रमुख स्थान है। भागीरथी गंगा के तट पर बसी हुई यह नगरी समस्त भारत के हिन्दू समाज का परम पवित्र तीर्थ है। यहाँ प्राचीन विश्वनाथ के मन्दिर का दर्शन कर प्रत्येक हिन्दू अपने आप को कृत-कृत्य समझता है। काशी में जीवन विसर्जन करने से सीधा वैकुण्ठ प्राप्त होता है, यह हिन्दुओं में लोकप्रसिद्ध मान्यता चली आई है। संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डितों का यह संसार प्रसिद्ध केन्द्र चला आ रहा है। प्राचीन दर्शनों के रहस्य को समझनेवाले नव्य न्याय और नवीन वेदान्त के शब्दजाल में सुलझे हुए, व्याकरण शास्त्र के सूत्रों को कण्ठस्थ किए हुए पण्डित तथा अपने आप को पण्डित मानने वाले विद्वानों का समागम यहाँ सदा बना रहता है। भारत के सभी प्रान्तों से सहस्रों की संख्या में संस्कृत के विद्यार्थी यहाँ स्वाध्याय के निमित्त आते रहते हैं। शान्त मनस्वी और विद्याभिमानी प्रवक्ता दोनों प्रकार के सरस्वती के उपासकों का दर्शन यहाँ किया जा सकता है। लाखों की संख्या में श्रद्धालु भक्तजन इस नगरी में प्रतिवर्ष तीर्थयात्रा करने आते हैं। पौराणिक पन्थियों का यह दुर्भेद्य दुर्ग समझा जाता है। अब स्वामी दयानन्द सत्य का हथियार लेकर इसी गढ़ को चुनौती देने पहुँच गये।

जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं, उन दिनों ईश्वरी नारायणसिंह काशी-नेरश थे। उनकी छत्र-छाया थी। पण्डित मण्डली भी भगवान् की पाषाण मूर्तियों के बाद उन्हें ही पूज्य समझती थी। काशी-नरेश ब्राह्मणों और साधुओं में विशेष श्रद्धा रखते थे। मूर्तिपूजा में उनकी परम्परागत आस्था थी।

स्वामी जी ने रामनगर में एक वृक्ष के नीचे डेरा डाल कर मूर्तिपूजा का खण्डन शुरू कर दिया। नगर में चारों ओर चर्चा होने लगी। पण्डित मण्डली के प्रतिनिधि समय समय पर स्वामीजी के पास आकर शङ्कासमाधान के बहाने उन की परीक्षा करने लगे। पं० ज्योतिप्रसाद उदासी का स्वामीजी के साथ मूर्तिपूजा तथा अद्वैतवाद पर वार्तालाप हुआ। वे स्वामीजी के युक्तिवाद से प्रभावित होकर उनके

भक्त बन गए। स्वामी निरञ्जनानन्द जी ने भी काशी–नरेश के पूछने पर स्पष्ट कह दिया कि दयानन्द सरस्वती का यह कथन सत्य है कि वेद में कहीं मूर्तिपूजा का विधान नहीं। यह पुरातन प्रथा चली आ रही है, अतः हम उस का अनुसरण कर रहे हैं।

काशी में आने पर आनन्द बाग में भी दयानन्द सरस्वती के डेरे पर सदा उत्सुकतापूर्ण दर्शकों को भीड़ बनी रहती थी। काशी के दिग्गज पण्डितों के शिष्य तथा स्वयं भी छदम्वेष में पण्डितगण कौपीनधारी साधु की विद्वत्ता की गहराई की परीक्षा करने आते थे। अपनी शंकाओं का समाधान सुनकर स्वामीजी के स्वाध्याय, प्रतिभापूर्ण तर्क तथा वर्णन शैली को देखकर आतंकित हो जाते थे। दयानन्द सरस्वती प्रायः संस्कृत में ही भाषण किया करते थे।

भारत के पिछली कुछ शताब्दियों के इतिहास में यह प्रथम अवसर था, जब इस विद्वत् पुरी काशी के शान्त वातावरण में धर्म–क्रान्ति का उबाल आया। किसी ने हलचल मचा दी थी। चिरकाल से अन्ध परम्परागत रूढ़ियों तथा धर्म के नाम पर जारी कुप्रथाओं का खुले मैदान में दयानन्द सरस्वती ने खण्डन कर सोते हुए जनसाधारण को जगाना शुरू किया।

काशी–नरेश को यह आन्दोलन सहन न हुआ। उन्होंने पण्डित मण्डली को आमन्त्रित कर इस सर्वत्यागी साधु से शास्त्रार्थ करने के लिए प्रोत्साहित किया। काशी में इस युग में वेद के अध्ययन करनेवाले बालशास्त्री ने ही वेदों का कुछ स्वाध्याय किया था। अन्य विद्वान् नव्य–न्याय तथा नवीन वेदान्त के शब्द जाल में ही अपने आपको तथा शिष्य मण्डली को उलझाए और सुलझाए रखते थे।

पण्डितों ने वेद में मूर्तिपूजा का विधान देखने के लिए पन्द्रह दिन का अवसर मांगा। काशी–नरेश ने इसकी स्वीकृति देकर दयानन्द सरस्वती के साथ शास्त्रार्थ की घोषणा करवा दी। इस शास्त्रार्थ सभा के अध्यक्ष स्वयं काशी–नरेश निश्चित किये गए। शास्त्रार्थ का दिन कार्तिक शुक्ला १२ सम्वत् १९२६ (16 नवम्बर 1869) नियत किया गया।

पन्द्रह दिन बीत गए। शास्त्रार्थ का दिन आ गया। दयानन्द सरस्वती के भक्त बलदेवप्रसाद ने उनसे कहा–महाराज! काशी केवल पण्डितों की नगरी नहीं, यह

गुण्डों की भी नगरी है। पण्डितों और गुण्डों का यहां गहरा गठबंधन है। शास्त्रार्थ में यहाँ के गुण्डे आपको जीवित न छोडेंगे।

दयानन्द सरस्वती ने कहा–जो पक्षपात रहित होकर ईश्वर की आज्ञानुसार सत्य का उपदेश करता है उसे भय कहां? सत्य की स्थापना के लिए मैं अपने जीवन का बलिदान सहर्ष कर सकता हूं। हे बलदेव! तुम चिन्ता क्यों करते हो? एक ईश्वर और धर्म ही हमारा साथी है। ईश्वर की आज्ञा का पालन करना हमारा कर्त्तव्य है।

दयानन्द सरस्वती के निवास स्थान आनन्द बाग में ही शास्त्रार्थ होना था। सहस्रों की संख्या में जनसमुदाय इस बाग में एकत्रित होने लगा। पचास सहस्र के लगभग दर्शकगण इस ऐतिहासिक शास्त्रार्थ को सुनने के लिए उत्सुकता के साथ आए।

दर्शकों को विशेषरूप से प्रभावित करने के लिए काशी नरेश ने शास्त्रार्थ में भाग लेने वाले सभी पण्डितों को विशेषरूप से सजाए हुए रथों पर सभा मण्डप में भिजवाया। पण्डितों के शिष्य उनके पास बैठकर चंवर लिए हुए उन्हें दोलायमान कर रहे थे। सभी के गले में सुन्दर रेशमी दुशाले थे। मस्तक तिलक से सुशोभित थे। सब अपने–अपने भव्य वेश में थे।

एक ओर एकमात्र कौपीनधारी दण्डी स्वामी दयानन्द सरस्वती पद्मासन लगाए बैठे थे, दूसरी ओर काशी के पण्डितों की सेना और बीच में प्रधान पद पर काशी–नरेश विराजमान थे। क्या ही भव्य दृश्य रहा होगा।

रघुनाथप्रसाद कोतवाल शांति रक्षा और नियंत्रण के लिए नियुक्त थे। काशी–नरेश ने उनके प्रबन्ध में हस्तक्षेप करके व्यवस्था ठीक न होने दी। दयानन्द सरस्वती के सहयोगी पं० ज्योतिप्रसाद को उनके पास बैठने की आज्ञा नहीं दी। उनके चारों ओर विरोधी पण्डितों का घेरा डलवा दिया। अर्थात् एक अकेले सत्य सिद्धान्त को हाथ में लेकर लोगों को शोषण से मुक्त कर उनका आत्मसम्मान लौटाने को तत्पर स्वामी दयानन्द और दूसरी ओर काशी नरेश और लोगों को अविद्या के जाल में फंसाये रखकर अपनी जीविका व स्वार्थ की पूर्ति करनेवाले धूर्तों की मण्डली।

दयानन्द सरस्वती के मन में एक ही भावना थी, वह यह कि इस शास्त्रार्थ द्वारा सत्य का प्रकाश करूं। सत्य के वेश में फैले हुए मिथ्या पाखण्ड जाल का नाश

करूं। जनसाधारण को एक निराकार ईश्वर की भक्ति का मार्ग दिखलाऊं। वेद का वास्विक ज्ञान लोगों तक पहुंचाऊँ।

काशी–नरेश और पण्डित मण्डली का उद्देश्य शास्त्रार्थ द्वारा सत्य का प्रकाश करना न था। वे तो हुल्लड़बाजी द्वारा सत्य की पराजय की घोषणा के निमित्त एकत्रित हुए थे।

शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। दयानन्द सरस्वती ने राजसभा के पण्डित ताराचरण तर्करत्न से प्रश्न किया–क्या आप चारों वेदों को प्रमाण मानते हैं ?

ताराचरण–हां मैं मानता हूं।

दयानन्द सरस्वती–यदि वेद में मूर्तिपूजा का विधान है तो कोई इस प्रकार का वेदमंत्र प्रस्तुत कीजिए, जिससे वेद में मूर्तिपूजा की प्रामाणिकता सिद्ध हो सके।

ताराचरण–हम केवल वेद को ही प्रमाण नहीं मानते। अन्य ग्रन्थों को भी प्रमाण मानते हैं जिनके आधार पर मूर्ति पूजा की प्रामाणिकता सिद्ध होती है।

दयानन्द सरस्वती–इस समय तो प्रश्न यह है कि वेद में मूर्तिपूजा का विधान है या नहीं ? आप मूर्तिपूजा के समर्थन में कोई वेदमंत्र प्रस्तुत कीजिये।

ताराचरण तर्करत्न मूर्तिपूजा के समर्थन में कोई वेदमंत्र प्रस्तुत नहीं कर सके, पर विषयान्तर में जाकर दयानन्द सरस्वती से पूछा कि क्या आप मनुस्मृति को प्रमाण मानते हैं? यदि हां तो क्यों ?

दयानन्द सरस्वती–सामवेद के ब्राह्मण में कहा है कि जो कुछ मनु ने कहा है वह औषधों का औषध है।

ताराचरण तर्करत्न के चुप हो जाने पर स्वामी विशुद्धानन्द ने प्रश्न किया–"रचनानुपपत्तेश्चानुमानम्" इस वेदान्त सूत्र को आप वेदमूलक सिद्ध कीजिये।

दयानन्द सरस्वती–यह इस समय शास्त्रार्थ का विषय नहीं है।

विशुद्धानन्द स्वामी–शास्त्रार्थ का विषय नहीं है तो क्या हुआ? आप इसका समाधान कर सकते हों तो कीजिये।

दयानन्द सरस्वती–इसका पूर्वापर पाठ देखकर ही समाधान किया जा सकता है।

विशुद्धानन्द स्वामी–यदि तुम्हें सब शास्त्र उपस्थित नहीं थे, तो शास्त्रार्थ

करने के लिए क्यों आ गए?

दयानन्द सरस्वती–क्या आपको सब शास्त्र उपस्थित हैं?

विशुद्धानन्द स्वामी–हां मुझे सब शास्त्र उपस्थित हैं।

दयानन्द सरस्वती–कहिए धर्म के कितने लक्षण हैं?

विशुद्धानन्द स्वामी कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दे सके। इस पर दयानन्द सरस्वती ने मनुस्मृति का श्लोक सुनाया–

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः
धीर्विद्या सत्यंक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥

स्वामी विशुद्धानन्द का इस प्रकार मानमर्दन होने पर बालशास्त्री बोले–मैंने सब धर्म शास्त्रों का अध्ययन किया है, आप मुझ से इस विषय में प्रश्न कीजिये।

दयानन्द सरस्वती–आप अधर्म के लक्षण बतलाइये।

बालशास्त्री–चुप हो गए।

इस पर एक साथ पण्डित मण्डली ने कोलाहल मचाते हुए पूछा कि वेद में प्रतिमा शब्द आया है वा नहीं? यदि आया है तो किस प्रकरण में ? आप प्रतिमा–पूजन का खण्डन किस आधार पर करते हैं?

दयानन्द सरस्वती–वेद में प्रतिमा शब्द तो आया है पर प्रतिमा–पूजन का कहीं विधान नहीं। एक निराकार ईश्वर की स्तुति प्रार्थना, उपासना का वर्णन है इसलिए मैं मूर्तिपूजा का खण्डन करता हूं।

अन्य पण्डितों के शान्त हो जाने पर पं० माधवाचार्य ने पूछा–**"उद् बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि, त्वमिष्टापूर्ते संसृथामयंच"** इस वेद मंत्र में पूर्त शब्द आया है इस का आप क्या अर्थ करते हैं।

दयानन्द सरस्वती–यहां पूर्त शब्द का अभिप्राय कुआं, तालाब, बापी आदि लोकहित के कार्यों से है। इसमें कहीं प्रतिमा–पूजन का विधान नहीं है।

दोपहर के तीन बजे से रात्रि के सात बजे तक इसी प्रकार शास्त्रार्थ चलता रहा। पण्डित मण्डली ने वास्तविक विषय को छोड़कर विषयान्तर में प्रश्न पूछने प्रारम्भ कर दिये। अन्त में पुराणों की वैदिक प्रामाणिकता पर विवाद प्रारम्भ हो गया। सभी पण्डित इच्छानुसार सब ओर से प्रश्नों की बौछार करने लगे। कोई व्यवस्था न

रही।

इधर दयानन्द सरस्वती सब प्रश्नों का प्रमाण और युक्ति संगत उत्तर देते रहे। सिंह अकेला ही सब भेड़ियों को परास्त कर रहा था।

धीरे-धीरे अंधकार का समय हो गया। शास्त्रार्थ स्थली पर प्रकाश की कोई उपयुक्त व्यवस्था न थी। ऐसे समय पं० वामानाचार्य ने दो पुराने पन्ने अत्यन्त अस्पष्ट अक्षरों में लिखे निकाल कर कहा-ये वेद के पन्ने हैं। इसमें लिखा है-यज्ञ की समाप्ति होने पर दसवें दिन पुराण का पाठ सुनें। यदि पुराण वेदानुकूल नहीं तो यह विधान किस प्रकार किया गया?

दयानन्द सरस्वती-आप वेदमंत्र पढ़कर सुनाइये और बतलाइये कि यह किस वेद का, किस प्रकरण का मन्त्र है? विशुद्धानन्द स्वामी बीच में पड़ते हुए बोले-आप ही पढ़ लीजिये, मेरे पास चश्मा नहीं, अतः आपको पढ़ना होगा।

दीपक के धुंधले प्रकाश में दयानन्द सरस्वती उसे पढ़ने का प्रयत्न करने लगे। उसमें न कहीं वेद का नाम, न अध्याय, न मंत्रसंख्या थी। इस बीच में स्वामी विशुद्धानन्द के संकेत पर सभी पण्डितों ने "दयानन्द सरस्वती हार गए" का नारा लगाना शुरू कर दिया। काशी-नरेश भी पण्डित मण्डली के इस नारे के साथ उनका समर्थन करके उठ गए। सत्य को परास्त करने का कुचक्र चल पड़ा।

गुण्डों ने दयानन्द सरस्वती पर ईंट पत्थर फेंकने शुरू कर दिये। रघुनाथ कोतवाल ने स्थिति को दृढ़ता के साथ संभाला और निष्पक्षता के साथ अपने कर्तव्य का पालन किया। भारी भीड़ को वहां से हटाकर शान्ति स्थापना की।

इस प्रकार शास्त्रार्थ तो समाप्त हुआ पर उसका उद्देश्य पूर्ण न हुआ। पण्डित मण्डली काशी में जुलूस निकालती हुई, जयकार के नारे लगाती हुई अपने-अपने घरों में चली गई।

दयानन्द सरस्वती को भारत के प्रसिद्ध संस्कृत के विद्वानों की इस अनैतिकता तथा असभ्य व्यवहार पर खेद तो हुआ पर किसी प्रकार का सन्ताप व निराशा न हुई क्योंकि उनका उद्देश्य तो महान था, सत्य की स्थापना का था।

समाचार पत्रों में दोनों प्रकार के समाचार प्रकाशित हुए। कुछ पत्रों ने दयानन्द सरस्वती के पराजय की घोषणा की। कुछ पत्रों ने पण्डित मण्डली के कृत्य पर खेद

प्रकट करते हुए दयानन्द सरस्वती के पाण्डित्य की प्रशंसा की और उनकी वास्तविक विजय की घोषणा करते हुए उनके धैर्य की प्रशंसा की।

वास्तविकता किसी से छिपी न रही। एक दिन राजपंडित तारानाथ तर्करत्न ने स्वयं एक बङ्गाली सज्जन चन्द्रशेखर से निजी बात चीत में कहा–मैं अच्छी तरह जानता हूं कि पौराणिक प्रपंच ठीक नहीं हैं। दयानन्द सरस्वती का कथन सत्य है, पर यदि हम दयानन्द सरस्वती के कथन की सत्यता स्वीकार कर लेते तो काशी–नरेश के मन में हमारे प्रति न जाने क्या भाव उत्पन्न हो जाते और हमारी तो जीविका ही मारी जाती।

स्वयं काशी–नरेश ने अपने इस अन्यायपूर्ण व्यवहार के लिए पश्चात्ताप किया। शास्त्रार्थ के कुछ वर्ष पश्चात् एक बार दयानन्द सरस्वती बम्बई से लौटते हुए काशी ठहरे। गोसाई बिहारीलाल के बाग में डेरा डाला। महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह (काशी–नरेश) ने अपने सुसज्जित रथ पर राज्य के एक उच्च कर्मचारी को दयानन्द सरस्वती के डेरे पर भेजा। उनसे अपने भवन में पधारने की प्रार्थना की। दयानन्द सरस्वती के मन में किसी प्रकार का विकार न था। वे उस कर्मचारी की विनयपूर्वक अभ्यर्थना पर काशी–नेरश के भवन पर गए। काशी–नरेश ने उन्हें सम्पूर्ण सम्मान प्रदान किया। विनयपूर्वक निवेदन किया–ऋषिवर! मेरे पूर्वज चिरकाल से मूर्तिपूजा करते आए हैं। मैं भी उसी प्रथा का सदा से श्रद्धा की भावना से अनुसरण करता रहा हूं। इसके प्रति मेरा परम अनुराग है। इसलिए आपके मूर्तिपूजा के प्रतिवाद पर मुझे दुःख हुआ। शास्त्रार्थ के समय यदि आपको मेरे व्यवहार से क्षोभ हुआ हो उसके लिए मुझे क्षमा करें।

काशी–नरेश की इस विनयपूर्ण क्षमायाचना से दयानन्द सरस्वती का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने काशी–नरेश को सांत्वना देकर शान्त किया और अपने डेरे पर वापिस आ गए।

एक बार मुलतान से गोस्वामी घनश्यामदास काशी दर्शन के लिए गए। उन्हें पं० बालशास्त्री ने स्पष्ट शब्दों में कहा–हम गृहस्थ हैं और दयानन्द हमारे पूज्य विद्वान् संन्यासी हैं। उनका हमारा शास्त्रार्थ कहाँ बन सकता है?

इस शास्त्रार्थ के पश्चात् भी दयानन्द सरस्वती एक मास तक काशी में रहे।

उनके चेहरे पर शान्तिमय तेज था। सत्य की आभा और निर्भयता थी। सदा की भांति नित्य नियमानुसार दो बजे रात्रि के पश्चात् एकान्त में जाकर समाधिस्थ रहते। दिन में भक्तजनों का शंका समाधान करते। एक निराकार सच्चिदानन्द ईश्वर की उपासना का उपदेश देते। मूर्तिपूजा को पाखण्ड प्रथा प्रतिपादित करते हुए उसका खण्डन करते ।

इस शास्त्रार्थ से दयानन्द सरस्वती की ख्याति भारत के सभी प्रान्तों में फैल गई। बम्बई और कलकत्ता में भी उनकी विद्वत्ता की धाक बैठ गई। बड़े-बड़े शहरों जैसे बम्बई, कलकत्ता में उनकी विद्वता की चर्चा होने लगी।

प्रयाग में कुम्भ मेले पर

काशी से दयानन्द सरस्वती मिर्जापुर होते हुए सं० १९२६ वि० माघ मास (ईस्वी सन् 1870) में प्रयाग पहुँचे। यहाँ इस अवसर पर कुम्भ का मेला हो रहा था स्वामीजी के आगमन का समाचार सर्वत्र फैल गया। माघ मास के शीतकाल में कौपीनधारी नग्न साधु के दर्शन करने के लिए लोग एकत्रित होने लगे। एक भक्त ने स्वामीजी से पूछा–महाराज! इस अत्यन्त तीव्र शीतकाल में आप नग्न रहते हैं–क्या आपको ठंड नहीं अनुभव होती?

दयानन्द सरस्वती–आपका मुख सदा नग्न रहता है। इसे ठंड क्यों नहीं अनुभव होती?

भक्तजन–मुख सदा खुला रहता है अतः इसे ठंड सहने का अभ्यास हो गया है।

दयानन्द सरस्वती–तुम्हारा मुख सदा खुला रहता है, हमारा सारा शरीर सदा खुला रहता है अतः इसे सर्दी-गर्मी सहने का अभ्यास हो गया है। यह कोई चमत्कार नहीं है।

मेले के अवसर पर भक्तजन मस्तक पर नाना प्रकार के तिलक के रूप में छाप लगाए दयानन्द सरस्वती के पास आते थे। पूछने की आवश्यकता न थी कि ये किस सम्प्रदाय को मानने वाले हैं। स्वामीजी उन्हें उपेदश देते–मस्तक श्रृङ्गार करने की अपेक्षा एक निराकार ईश्वर की उपासना द्वारा आत्म-श्रृङ्गार करो। इन बाह्य आडम्बरों को छोड़कर योगाभ्यास की ओर रुचि उत्पन्न करो। संध्या, अग्निहोत्र और गायत्री का जाप किया करो। इसी में मनुष्य का कल्याण है। एक निराकार

ईश्वरोपासना में भेद करने से क्या लाभ?

प्रयाग में इन दिनों ब्रह्मसमाज के प्रधान नेता देवेन्द्रनाथ ठाकुर भी आये हुए थे। वे भी स्वामीजी के आगमन का समाचार सुनकर उनसे मिलने आए। दोनों की प्रेमपूर्ण बात–चीत हुई। दयानन्द सरस्वती ने देवेन्द्रनाथ ठाकुर को कलकत्ता में संस्कृत पाठशाला खोलने का परामर्श दिया। देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने स्वामीजी के कलकत्ता पधारने पर विचार करने के लिए प्रस्ताव रखा।

प्रयाग से दयानन्द सरस्वती पुनः मिर्जापुर आए। यहां भी स्वामीजी का स्थानीय पण्डितों के साथ "वेद में मूर्तिपूजा का विधान है या नहीं" इस विषय पर शास्त्रार्थ हुआ। दयानन्द सरस्वती ने मूर्तिपूजा को वेद–विरुद्ध सिद्ध करते हुए सब उपस्थित जनों को संन्ध्योपासना के लिए प्रेरित किया। मिर्जापुर में एक वैदिक पाठशाला की स्थापना की।

मिर्जापुर से पुनः काशी पधारे। काशी में दो मास निवास कर पाखण्डमय कुरीतियों और वेदविरुद्ध मतों का खण्डन करते रहे।

काशी से सोरों होते हुए कासगंज पधारे। कासगंज में अष्टाध्यायी महाभाष्य तथा मनुस्मृति आदि वेदानुकूल ग्रन्थों के अध्ययन के लिए एक पाठशाला की स्थापना की।

सर्वहित कामना

कासगंज से दयानन्द सरस्वती सं० १९२७ विक्रमी में अनूपशहर पधारे। यहां लाला बाबू की कोठी पर डेरा डाला। इन दिनों अनूपशहर में रामलीला का समारोह था। जन साधारण से पूछा कि राम जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम और पतिपरायण महिलोत्तमा सीता माता का स्वांग बनाकर खेल तमाशा करना, पुरुषों को स्त्रीवेश में सभा में उपस्थित करना कहाँ तक उचित है? रामलीला का आयोजन करने वाले अपने आपको प्रतिष्ठित पुरुष समझने वाले व्यक्ति क्या अपने परिवार के पुरुषों और देवियों का इस प्रकार स्वाँग में भाग लेना अपनी प्रतिष्ठा के योग्य समझते हैं? **भक्तजन महापुरुषों के जीवन का स्वाध्याय करें। अपने जीवन को उत्तम बनाएं। राम और सीता के आदर्श का अनुसरण करें। यही सच्ची रामलीला है।**

अनूपशहर में स्वामीजी ने अपने प्रचार में मृत पितरों के स्थान पर जीवित

पितरों के श्राद्ध का समर्थन किया। जीव ब्रह्म की एकता का विरोध करते हुए उनके परस्पर भेद का निरूपण किया। मूर्तिपूजा को वेद-विरुद्ध प्रतिपादित करते हुए एक निराकार ईश्वर की उपासना का उपदेश दिया।

एक दिन एक ब्राह्मण ने स्वामीजी के मूर्तिपूजा के खण्डन से रुष्ट होकर उन्हें पान में विष दे दिया। स्वामीजी ने पान तो खा लिया पर पीछे पता लगने पर न्योली क्रिया द्वारा उसे निकाल दिया। विष का प्रभाव उन पर होने न पाया।

अनूपशहर का मुसलमान तहसीलदार सैय्यद मुहम्मद दयानन्द सरस्वती का भक्त था। उसे ज्यों ही यह समाचार मिला उसने उस ब्राह्मण पर अभियोग लगाकर गिरफ्तार करा दिया। प्रसन्न मन से दयानन्द सरस्वती के पास आया। वह समझता था कि स्वामीजी मेरे इस कार्य से प्रसन्न होंगे। पर दयानन्द सरस्वती ने अप्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा-सैय्यद मुहम्मद! मैं संसार के प्राणियों को कैद कराने के लिए नहीं आया, कैद से छुड़ाने के लिए आया हूँ। यदि दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता तो हम लोग अपनी सद्भावना क्यों छोड़ें?

दयानन्द सरस्वती के आदर्श विचारों को सुनकर सैय्यद मुहम्मद चकित हो गए और उस ब्राह्मण से अपील कराकर उसे छुड़वा दिया।

यह था दयानन्द सरस्वती का ऊँचा आदर्श-चरित्र। उनके मन में कभी किसी अहितकारी के लिए भी वैर भावना न थी। विश्व-कल्याण ही उनका उद्देश्य था। यही एक संन्यासी का कर्त्तव्य होता है जिसे स्वामी जी अच्छी प्रकार जानते थे।

बंगाल यात्रा और ब्रह्मसमाज

अनूपशहर से दयानन्द सरस्वती गंगा तट पर विचरते हुए दो वर्ष तक भिन्न-भिन्न नगरों में प्रचार यात्रा करते रहे। अवैदिक मान्यताओं का खण्डन, वैदिक सिद्धान्तों का शास्त्र और तर्क द्वारा निरूपण और विद्वानों के साथ शास्त्र चर्चा करते हुए सं० १९२९(दिसम्बर 1872) पौष मास में कलकत्ता पहुँचे। श्री चन्द्रशेखर बैरिस्टर ने स्वामीजी के निवास का प्रबन्ध राजा सौरेन्द्र मोहन के प्रमोद भवन में किया।

यहाँ इन दिनों ब्रह्मसमाज का प्रचार उत्कर्ष पर था जिसके प्रवर्तक राजा राममोहन राय थे।

भारत में सर्वत्र हिन्दू धर्म में कुरीतियों का प्रसार था। जन्ममूलक जतिभेद के कारण ब्राह्मणेतर लोगों का झुकाव ईसाई मत की ओर हो रहा था। अंग्रेजी पढ़े नवशिक्षित राम मोहन राय ने हिन्दू धर्म में सुधार का आन्दोलन प्रारम्भ किया। इससे शिक्षितजनों को अपने विचारों के अनुकूल हिन्दू धर्म में आश्रय मिला और उसकी ईसाई धर्म की ओर दौड़ कुछ कम हुई।

जिन दिनों दयानन्द सरस्वती कलकत्ता आए उस समय ब्रह्मसमाज के मुख्य नेता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर तथा बाबू केशवचन्द्र सेन थे। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर की आस्था प्राचीन वैदिक शास्त्रों की ओर अधिक थी और केशव चन्द्र सेन पशिचमी विचारों के पोषक थे। वे प्रभावशाली वक्ता थे। दोनों नेताओं में कुछ मतभेद बना रहता था।

पं० हेमचन्द्र चक्रवर्ती ब्रह्मसमाज के विद्वान् प्रचारकों में थे। एक दिन पण्डितजी दयानन्द सरस्वती के निवास स्थान पर आए। स्वामीजी के साथ भिन्न-भिन्न विषयों पर चर्चा करते रहे। दयानन्द सरस्वती ने उन्हें उनके प्रश्नों के उत्तर में जो विचार प्रकट किये उनका साराँश इस प्रकार है : –

१. विश्व निर्माता प्रभु ने भिन्न-भिन्न जातियों (योनियों) के रूप में प्राणियों को जन्म दिया है। ये जातियाँ–मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट पतङ्ग आदि के रूप में हैं। मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार वर्ण गुण कर्म अनुसार होते हैं। अध्ययन, अध्यापन में प्रवृत्त, वेदशास्त्रों के ज्ञाता पण्डित ब्राह्मण कहलाते हैं। जो प्रजा की रक्षा के निमित्त सदा तत्पर रहते हैं ऐसे ज्ञानवान् पुरुष क्षत्रिय हैं। जो व्यापार करते हुए समाज सेवा करें वे वैश्य हैं। अशिक्षित जनसेवक पुरुष शूद्र हैं।

२. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप है। वह एक है। निराकार है। उस की कोई मूर्ति नहीं।

३. योगदर्शन में प्रतिपादित अष्टाङ्ग योग के निरन्तर चिरकाल तक अभ्यास करने से ईश्वर की प्राप्ति होती है। गायत्री मन्त्र का अर्थसहित जप इस मार्ग में परम सहायक है।

४. प्राचीन षड् दर्शनों में ईश्वर के विषय में कोई मतभेद नहीं। सृष्टि रचना-क्रम में भिन्न-भिन्न कारणों का उनमें निरूपण किया गया है। समन्वय बुद्धि से

सभी दर्शनों के स्वाध्याय की आवश्यकता है।

जिस दिन दयानन्द सरस्वती कलकत्ता पधारे थे, बाबू केशव चन्द्र सेन कहीं बाहर गए हुए थे। कलकत्ता आते ही वे दयानन्द सरस्वती से मिलने गए। स्वामीजी को अपना परिचय दिये बिना ही पूछा कि क्या आप कभी बाबू केशवचन्द्र सेन से मिले हैं।

स्वामीजी ने उत्तर दिया कि हाँ मिला हूँ। सेन महोदय ने पूछा—कब और कहाँ मिले हैं? स्वामीजी ने कहा—अभी यहीं मिल रहा हूँ।

केशवचन्द्र सेन ने चकित होकर कहा कि आपने मुझे कैसे पहचाना ?

दयानन्द सरस्वती ने उत्तर दिया कि आपके वार्तालाप की शैली से ही आप पहचाने गए हैं।

परस्पर धर्म सम्बंधी वार्तालाप करते हुए केशवचन्द्र सेन ने दयानन्द सरस्वती से पूछा—महाराज! इस समय संसार में तीन प्रमुख धर्म हैं। वे अपने-अपने ग्रन्थ वेद, बाईबल और कुरान को ईश्वरीय ग्रन्थ मानते हैं। आप वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं। हम कैसे मानें कि आपका मन्तव्य सत्य पर आधारित है ?

स्वामीजी ने बाईबल और कुरान में अनेक दोष दिखाते हुए वेद के महत्त्व पर प्रकाश डाला और कहा कि ईश्वरीय ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में प्रकाशित होने तथा निर्दोष होने से वैदिक धर्म ही सच्चा धर्म है। वेद पक्षपात रहित है। परस्पर के विरोधाभासों से दूर है।

स्वामीजी के वचनों से प्रभावित होकर सेन महोदय ने कहा— शोक है वेदों का अद्वितीय विद्वान् अंग्रेजी नहीं जानता, अन्यथा वह मेरे इंग्लैंड जाने पर वैदिक संस्कृति पर प्रकाश डालने वाला मेरा अनन्य साथी होता।

स्वामीजी ने तुरन्त उत्तर दिया—शोक है, ब्रह्मसमाज का ओजस्वी नेता संस्कृत नहीं जानता और जनसमुदाय को उस भाषा (अंग्रेजी) में उपेदश देता है जिसे वे नहीं समझते।

स्वामीजी ने केशवचन्द्र सेन के साथ समय-समय पर अपने वार्तालाप में यज्ञोपवीत के महत्त्व पर प्रकाश डाला। एक निराकार ईश्वर की उपासना के तत्व का निरूपण किया। हवन के विषय में बतलाया कि वह वायुमण्डल को शुद्ध रखने की

एक रीति है। इस में मूर्तिपूजा का कोई आभास नहीं।

हिन्दी में प्रवचन प्रारम्भ

दण्डी स्वामी विरजानन्द से विदाई लेने के पश्चात् दयानन्द सरस्वती संस्कृत में ही व्याख्यान दिया करते थे। हरिद्वार के कुम्भ मेले पर मठाधीशों, साधुओं के वैभव और विलासमय जीवन को देखकर उनके मन में एक त्याग भावना जागृत हुई थी जिस से उन्होंने सम्पूर्ण वस्त्रों का परित्याग कर एक कौपीन धारण करना शुरू किया था।

केशवचन्द्र सेन ने उन से निवेदन किया–महाराज! यद्यपि आप ऐसी सरल संस्कृत में व्याख्यान देते हैं कि शिक्षित जन समुदाय उसे समझ लेता हैं, पर यदि आप प्रचलित लोकभाषा में व्याख्यान दें तो सर्वसाधरण जन उस से पूरा लाभ उठा सकेगा। आपके विचारों के अनुवादक आपके अभिप्राय को ठीक प्रकार से नहीं प्रकट कर पाते। इसके अतिरिक्त यदि आप जनसमुदाय में उपदेश देते हुए वस्त्र धारण कर उपस्थित हों तो अधिक अच्छा होगा, यह मेरा निजी विचार है यदि आप उपयुक्त समझें तो उसे स्वीकार करें।

दयानन्द सरस्वती ने सेन महोदय के दोनों विचारों से सहमति प्रकट की और कलकत्ता से प्रस्थान के बाद उसके अनुसार कार्य आरम्भ कर दिया।

कलकत्ता रहते हुए दयानन्द सरस्वती का प्रथम व्याख्यान बाबू केशवचन्द्र सेन के आवास–स्थान पर हुआ। यद्यपि व्याख्यान संस्कृत भाषा में हुआ पर उनकी भाषण–शैली इतनी सरल थी कि सभी उपस्थित जन उसे समझ सकते थे। भाषण में स्वामीजी ने मूर्तिपूजा, अद्वैतवाद, जन्ममूलक वर्णभेद तथा बाल विवाह के विरुद्ध अपना मत प्रकाशित करके अनेकों वैदिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। एक ईश्वर की उपासना का निरूपण किया।

इन्हीं दिनों ब्रह्मसमाज का वार्षिकोत्सव भी था। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के निमंत्रण पर स्वामीजी ने वहाँ भी अपना प्रभावशाली व्याख्यान दिया।

तीन मास तक दयानन्द सरस्वती कलकत्ता में रहे। प्रायः प्रति दिन सांयकाल चार बजे उनके निवास स्थान प्रमोद कानन में धर्म चर्चा होती थी। उसमें बाबू केशवचन्द्र सेन, महर्षि देवन्द्रनाथ ठाकुर, पं० ताराचन्द तर्कवाचस्पति, पं० महेशचन्द्र

न्यायरत्न, पं० हेमचन्द्र चक्रवर्ती आदि महानुभाव उपस्थित होते थे। भिन्न-भिन्न स्थानों पर वैदिक धर्म के महत्त्व पर व्याख्यान भी देते रहे। इन व्याख्यानों में उन्होंने विशेषरूप से निम्नलिखित बातों पर ध्यान आकर्षित किया :-

१. एक सच्चिदानन्द निराकार ईश्वर की उपासना के बिना मनुष्य मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता।

२. जीव और ब्रह्म में अद्वैत भावना नहीं है। वे पृथक्-पृथक् हैं।

३. कर्मों द्वारा ब्राह्मण शूद्र और शूद्र ब्राह्मण हो जाता है। दुश्चरित्र, मूर्ख और धर्महीन हो तो उसे ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता। शूद्र यदि ज्ञानी सच्चरित्र और धार्मिक हो तो उसे ब्राह्मण पद पर प्रतिष्ठित करना चाहिये।

४. स्त्रियों को पुरुषों के समान शिक्षा का अधिकार हैं।

५. बाल विवाह अनेक पापों का मूल है।

६. पुराण सर्वथा अमान्य हैं।

७. पुनर्जन्म द्वारा जीव नाना योनियों में भ्रमण करता है।

८. जीवित पितरों की सम्मान और श्रद्धा के साथ शुश्रुषा करनी योग्य है। मृत पितरों का श्राद्ध मूर्खतापूर्ण प्रथा है।

कलकत्ता में रहते हुए दयानन्द सरस्वती ने ब्रह्मसमाज की योजना को देखा। प्रचार कार्य को स्थायी रूप देने के लिए समाज का संगठन आवश्यक है, यह अनुभव किया।

कलकत्ता से दयानन्द सरस्वती हुगली आए। यहाँ इन दिनों काशी-नरेश के राजपण्डित ताराचरण तर्करत्न भी आये हुए थे। काशी शास्त्रार्थ के वर्णन में इन का नाम-निर्देश हो चुका है। हुगली निवासी श्री वृन्दावन बाबू के अत्यधिक अनुरोध पर पं० ताराचरण दयानन्द सरस्वती से शास्त्रार्थ करने पर सहमत हो गए। शास्त्रार्थ का विषय था कि मूर्तिपूजा वेदानुकूल है या नहीं। शास्त्रार्थ चला। पं० ताराचरण जी प्रतिमा-पूजन को वेद और तर्क से सिद्ध न कर सके। अन्त में कह गए कि "उपासनामात्रमेव भ्रममूलम्" अर्थात् उपासनामात्र ही भ्रममूलक है। इसका अभिप्राय स्पष्ट हो गया कि यदि उपासनामात्र ही भ्रममूलक है तो प्रतिमापूजन भी भ्रम मूलक ही है।

इसी वाक्य के उच्चारण से पं० ताराचरण दयानन्द सरस्वती की पकड़ में आ गए। अपनी पराजय स्वीकार कर ली।

शास्त्रार्थ के पश्चात् जब सब लोग चले गए, पारस्परिक गोष्ठी में वृन्दावन तथा कुछ अन्य सज्जनों के समक्ष पं० ताराचरणजी ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया कि पाषाणदि प्रतिमा-पूजन मिथ्या है यह मैं जानता हूँ, पर क्या करूँ? यदि सत्य कहूँ तो मेरी अजीविका ही चली जाती है। काशीराज मुझे नौकरी से निकाल देंगे। आपके समान मैं सत्यवक्ता नहीं हो सकता। इस प्रकार अनेक विद्वान् केवल स्वार्थ के कारण ही मूर्ति पूजा के पैरोकार बन रहे हैं। हुगली से दयानन्द सरस्वती वर्धमान, भागलपुर, पटना, छपरा होते हुए आरा पधारे। आरा में महाराज डुमरांव की कोठी पर उतरे। डुमरांव के महाराज स्वामीजी के भक्तों में से थे।

इस यात्रा में दयानन्द सरस्वती का रूप परिवर्तन हो गया था। अब वे मात्र कोपीनधारी न थे, पूरे वस्त्र पहनते थे। पैरों में जूता भी रहता था।

यहाँ भी आपका पं० रुद्रदत्तजी के साथ प्रतिमा-पूजन पर वार्तालाप हुआ। दयानन्द सरस्वती के युक्तिवाद के आगे वे ठहर न सके। बीच में ही उठकर चले गए।

आरा से डुमरांव होते हुए पुनः मिर्जापुर आए। यहाँ दयानन्द सरस्वती ने एक पाठशाला स्थापित कर रखी थी। पाठशाला की प्रबन्ध व्यवस्था ठीक न होने से इसे बन्द करना पड़ा।

मिर्जापुर में स्वामीजी ने अपने भक्त जवाहरदास जी को बुलवाकर काशी में एक पाठशाला स्थापित कराई। इसका नाम सत्यशास्त्र रखा। भारत के प्रसिद्ध विद्वान् पं० शिवकुमारजी शास्त्री इसमें अष्टाध्यायी, महाभाष्य पढ़ाने के लिए नियुक्त हुए।

मिर्जापुर से दयानन्द सरस्वती प्रयाग, कानपुर, लखनऊ, फर्रूखाबाद, कासगंज, छलेसर होते हुए पौष सं० १९३० वि० को अलीगढ़ पधारे। अलीगढ़ में राजा जयकिशनदास के अतिथि बनकर रहे।

यहाँ सर सैय्यद अहमद भी दयानन्द सरस्वती से मिलने आते रहते थे। एक दिन उन्होंने स्वामीजी से पूछा कि हवन से वायु शुद्धि किस प्रकार हो सकती है? स्वामीजी ने कहा जैसे थोड़े से हींग के छौंक से सारी दाल हींग गन्धी हो जाती है और उसके छौंक की गन्ध सारे घर में भी फैल जाती है उसी प्रकार हवन सामग्री के अग्नि

में डालने से आसपास का सारा वायुमडण्ल सुगन्धित हो जाता है।

राजा जयकिशनदासजी दयानन्द सरस्वती के सत्सङ्ग से इतने प्रभावित हुये कि उन्होंने स्वामीजी से अनुरोध किया कि उनके उपदेशों को ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित किया जाये। राजा जयकिशनदासजी ने उसके प्रकाशन व्यय का भार अपने ऊपर लेना स्वीकार किया। यही सत्यार्थप्रकाश के निर्माण का बीजारोपण था।

अलीगढ़ से हाथरस होते हुए दयानन्द सरस्वती मथुरा पधारे। एक दिन इस नगर में अपनी ज्ञान पिपासा को शान्त करने के निमित्त यहाँ आए थे। आज वे प्यासों की प्यास बुझाने के लिए आए। एक दिन वे यहाँ प्रकाश की खोज में आए थे, आज वे यहाँ अन्धकार में पड़े आर्तजनों को प्रकाश देने आए।

मथुरा में राजा उदितनारायणसिंह उन्हें स्टेशन से अपने घर लेकर आए। स्वामीजी के अनुरोध से राजा महोदय ने उनके निवास का प्रबन्ध वृन्दावन में कर दिया। फाल्गुन शुक्ला ११ सं० १९३०(ई० सन 1874) के दिन वे वृन्दावन पधारे। रङ्गजी के मन्दिर के पीछे मलूकदास के राधा उद्यान में डेरा डाला।

वृन्दावन में चक्रांकितों के गुरु रंगाचार्य निवास करते थे। रंगाचार्य चक्रांकित सम्प्रदाय के सर्वमान्य अधिष्ठाता थे और मूर्तिपूजा के गढ़ थे।

वृन्दावन में दयानन्द सरस्वती के रहने का प्रबन्ध वहां के चुंगी विभाग के अध्यक्ष बक्षी महबूब मसीह ने किया। स्वामीजी ने बक्षीजी द्वारा नगर में हिन्दी और उर्दू में विज्ञापन लगवा दिये कि होली के पश्चात् प्रतिदिन सांयकाल के समय प्रतिमा-पूजन, ईश्वर के अवतार-ग्रहण तथा तिलक छाप आदि के विरुद्ध उनके व्याख्यान होंगे। एक निराकार ईश्वर की उपासना और मुक्ति के साधनों पर प्रवचन भी होंगे।

रंगाचार्य के पास भी स्वामीजी ने एक पत्र भेजा कि यदि आप प्रतिमा-पूजन, साम्प्रदायिक तिलक छाप, चक्रांकन आदि प्रथाओं को वेदानुकूल मानते हैं तो मेरे साथ शास्त्रार्थ कर इसे सिद्ध कीजिये।

रंगाचार्य ने लिखित उत्तर भेजा कि शास्त्रार्थ ब्रह्मोत्सव के पश्चात् होगा। मैं इन दिनों मेले के कार्य में व्यस्त हूँ।

दयानन्द सरस्वती ने अपने कार्यक्रम के अनुसार व्याख्यान प्रारम्भ कर दिये।

व्याख्यानों में जहाँ प्रतिमा-पूजन, अवतारवाद, तिलक छाप, चक्रांकन, तथा अन्य प्रथाओं का प्रमाण और तर्क द्वारा खण्डन किया, वहां साथ ही ईश्वरोपासना, सृष्टि रचना, मुक्ति के साधन आदि विषयों पर वेद और शास्त्रों के प्रमाणों द्वारा अपने विचारों का निरूपण किया अर्थात् खण्डन और मण्डन साथ-साथ चलते थे।

ब्रह्मोत्सव का मेला समाप्त हो गया, पर रंगाचार्य शास्त्रार्थ के लिए तैयार न हुए और अस्वस्थता का बहाना बना लिया।

वृन्दावन से दयानन्द सरस्वती पुनः मथुरा चले आए। यहां मथुरा के पण्डों, चौबों और गुण्डों ने लाठियां लेकर स्वामीजी के डेरे पर धावा बोल दिया। स्वामी के भक्त राजपूत वहां विद्यमान थे। इसी वीर राजपूत मण्डली को देखकर धावा बोलने वालों को निराश होकर वापिस जाना पड़ा। स्वामी जी को हर स्थान पर स्वार्थसिन्धु तथाकथित धर्म के ठेकेदार जो भोली-भाली प्रजा को लूटते थे, का कोपभाजन बनना पड़ता था। लेकिन उन्होंने कभी भी सत्य के प्रचार को धीमा नहीं होने दिया।

मथुरा से दयानन्द सरस्वती मुरसान और प्रयाग होते हुए पुनः काशी आ गए। इस बार काशी में प्रथम व्याख्यान हिन्दी में दिया। स्वामीजी को हिन्दी में व्याख्यान देने का अभ्यास न था अतः बीच-बीच में संस्कृत के शब्दों और वाक्यों का आश्रय लेना पड़ता था।

काशी में स्वामीजी ने अपनी पाठशाला का भी निरीक्षण किया। उसमें कुछ परितर्वन भी किये। कुछ समय के लिए यह पाठशाला बन्द करनी पड़ी।

अध्याय तीन

सत्यार्थप्रकाश की रचना

दयानन्द सरस्वती के अलीगढ़ में प्रचार यात्रा के समय राजा जयकिशनदास ने उनसे प्रार्थना की थी कि आपके उपदेशों का संग्रह छपवाकर प्रकाशित करा दिया जाय तो जनता का बहुत उपकार होगा। वे स्वामीजी के परम भक्त थे। इन दिनों वे बनारस में डिप्टी कलेक्टर थे। स्वामीजी से इस कार्य को क्रियात्मक रूप देने का पुनः अनुरोध किया। प्रकाशन का सम्पूर्ण आर्थिक व्यय का भार अपने ऊपर लेने के लिए निवेदन किया।

राजा जयकिशनदास के अनुरोध पर स्वामीजी ने "सत्यार्थ प्रकाश" नाम से ग्रन्थ का लेखन प्रारम्भ कर दिया। राजाजी ने महाराष्ट्र के एक पण्डित चन्द्रशेखर को लेखक के रूप में नियुक्त कर दिया।

सत्यार्थप्रकाश का लेखन आषाढ़ वदी ११ सं० १९३१ तदनुसार १२ जून सन् १८७४ में प्राम्भ हुआ। सं० १९३२ (सन् १८७५) में इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण स्टार प्रेस बनारस में मुद्रित हुआ।

इस बार काशी निवास के समय दयानन्द सरस्वती ने यहाँ ईसाई मत और इस्लाम की आलोचना की। बाईबल की कहानियों का उद्धरण देते हुए उनमें किस प्रकार ईश्वर की हीन कल्पना की गई है, उस पर प्रकाश डाला। मुसलमानों के विषय में कहा कि वे दूसरों की तो बुतपरस्ती (मूर्तिपूजा) के विषय में आलोचना करते हैं, उनकी मूर्तियों को बलात् तोड़ देते हैं, पर स्वयं बुतपरस्ती नहीं छोड़ते हैं। प्रतिवर्ष सहस्रों की संख्या में हज करने मक्का जाते हैं। वहां काला पत्थर (हज रुल अस्वद) की पूजा करते हैं। मक्का की तीर्थ यात्रा कर अपने आपको हाजी कहते हैं और समझते हैं कि यह बहिश्त (स्वर्ग) पहुँचने का एक मार्ग है।

सर सैय्यद अहमद खां इन दिनों काशी में सब-जज थे। वे दयानन्द सरस्वती के डेरे पर आकर उनके साथ धर्म के विषय में वार्तालाप करते थे। उन्होंने अपने बंगले पर भी महाराज का एक व्याख्यान कराया।

एक दिन दयानन्द सरस्वती ध्यान से निवृत्त होकर अपने डेरे पर बैठे थे। उनके पास पं० सुन्दरलाल आदि कुछ सज्जन बैठे हुए थे। सामने से एक ब्राह्मण कुछ

मिष्ठान लेकर महाराज के पास आ रहा था। स्वामीजी ने पं० सुन्दरलाल से कहा कि आज तुम्हें एक कौतुक दिखाता हूं।

जैसे ही उस ब्राह्मण ने मिष्ठान्न महाराज के पास रखा, स्वामीजी ने उसमें से कुछ मिष्ठान उठाकर प्रसाद के रूप में खाने को दिया। उसने लेने से इनकार कर दिया और कांपने लगा। पूछने पर उसने स्वीकार किया कि मैं इसमें मारक विष का मिश्रण करके लाया हूं।

पं० सुन्दरलाल आदि सज्जन स्वामीजी की यौगिक दिव्यदृष्टि को देखकर चकित हो गए। बाद में उन्होंने स्वामीजी से निवेदन किया कि महाराज! इस ब्राह्मण को हमें पुलिस के सुपुर्द करने की आज्ञा दीजिये। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि–"यह अपनी दुष्टता का परित्याग नहीं करना चाहता तो मैं साधु धर्म–क्षमा का किस प्रकार परित्याग करूँ, अपने पाप से यह स्वयं कांप रहा है। यही मानसिक दण्ड इसके लिए पर्याप्त है।"

एक दिन एक वृद्ध महात्मा स्वामीजी के पास आए। उन्होंने स्वामीजी से निवेदन किया कि आप योगी महात्मा हैं। इस परोपकार के बखेड़े में न पड़ें, शान्त एकान्त स्थान में योग समाधि में मग्न रहें तो मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

स्वामीजी ने उत्तर दिया–मुझे अपनी मुक्ति की चिन्ता नहीं, पर उन लाखों नरनारियों की मुक्ति की चिन्ता है जो घोर अन्धकार में पड़े हुए दु:ख भोग रहे हैं। अपने आपको दीनहीन और सदा भय से व्याकुल अनुभव कर रहे हैं।

प्रयाग से जबलपुर होते हुए दयानन्द सरस्वती नासिक पधारे। नासिक में वहाँ के सब–जज विष्णु मोरेश्वर भिड़े के घर पर निवास किया। यहां स्थानीय पण्डितों के साथ स्वामीजी का शास्त्रार्थ हुआ। इस शास्त्रार्थ का विस्तृत विवरण बम्बई के एक पत्र "इन्द्र प्रकाश" में प्रकाशित हुआ। इस विवरण में दयानन्द सरस्वती के विषय में लिखा है:–

"नदी के तट पर विचारमूढ़ ब्राह्मणों के बृहत् समूह के सामने पुरोहित दल की, जिन्हें हिन्दुओं की मानसिक शिक्षा सौंपी गई है, बुराइयों और उन लोगों के अविद्याजन्य दोषों को निर्भीकता और अटल भाव के साथ स्पष्टाक्षरों में वर्णन करने के कारण इस स्थान के लोग पण्डित दयानन्द सरस्वती से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने

श्रोताओं के आह्लाद और साधुवाद के बीच पण्डित दयानन्द सरस्वती को बहुमूल्य वस्त्र उपहार में दिये।"

प्रयाग में प्रचार यात्रा करते हुए दयानन्द सरस्वती के पास बम्बई के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों की ओर से बम्बई पधारने के लिए निमन्त्रण-पत्र आ रहे थे। काशी शास्त्रार्थ तथा वृन्दावन में पाखण्ड लीला की निर्भय आलोचना से उदार विचारों के बम्बई निवासी कुछ सज्जन स्वामीजी महाराज के भक्त बन गए थे। नासिक में पण्डितों के साथ शास्त्रार्थ की चर्चा का वर्णन बम्बई के पत्र 'इन्दु प्रकाश' में प्रकाशित हुआ। इसमें स्वामीजी की विजय, वैदिक सिद्धान्तों के प्रतिभापूर्ण विवेचन और पाखण्डमय प्रथाओं के खण्डन का विस्तृत विवरण था। स्वामीजी के भक्त सेवक लाल ने काशी शास्त्रार्थ का वर्णन मुद्रित करवा कर बम्बई की जनता में इतनी अधिक संख्या में बँटवाया कि दयानन्द सरस्वती की विद्वत्ता की ख्याति सर्वत्र फैल गई। जनसाधारण इस दिव्यमूर्ति के दर्शन की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे।

बम्बई प्रवास

आश्विन सुदी १२ सं० १९३१(ई० सन 1874) को दयानन्द सरस्वती बम्बई पधारे। स्टेशन पर गण्यमान्य व्यक्ति स्वागत के लिए उपस्थित थे। बालुकेश्वर में महाराज के निवास का प्रबन्ध किया गया। वहीं प्रतिदिन धर्म-सभा होने लगी।

बम्बई में इन दिनों वल्लभ सम्प्रदाय का बहुत प्रचार था। स्वामीजी ने वल्लभ सम्प्रदाय के गोकुलिये गोसांइयों की गुप्त लीलाओं का परिचय प्राप्त किया। इनकी पाखण्डमय प्रथाओं का खण्डन करने का निश्चय कर लिया।

दयानन्द सरस्वती के व्याख्यानों का प्रबन्ध फ्रामजी काउस जी हाल में किया गया। अपने व्याख्यानों में उन्होंने वेदमन्त्रों के प्रमाणों द्वारा मूर्तिपूजा का खण्डन किया। वैष्णव मत विशेषतः वल्लभ सम्प्रदाय की लीलाओं की तीव्र आलोचना की। भक्तजनों को समझाया कि मूर्ति जड़ है, इसे ईश्वर मानोगे तो ईश्वर भी जड़ सिद्ध होगा। भिन्न-भिन्न मूर्तियों के पूजन से ईश्वर एक नहीं रहेगा। प्रतिमा में ईश्वर की भावना से ईश्वर की अखण्डता नहीं रह सकती। यदि कहो कि भावना में भगवान् है तो काष्ठ खण्ड में इक्षुदण्ड (गन्ना) की भावना से मुख मीठा क्यों नहीं हो जाता? मृगतृष्णा में जल की भावना से प्यास क्यों नहीं बुझती? **भावना के साथ सत्य का**

होना आवश्यक है। एक निराकार अखण्ड सच्चिदानन्द ईश्वर की कल्पना ही सत्य भावना है। उसी में विश्वास रखना, उसकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना करना ही सत्य भावना है। **असत्य में सत्य की भावना करना अन्धविश्वास है।**

आर्यों के प्राचीन इतिहास पर प्रकाश डालते हुए प्राचीन शिक्षाप्रणाली और आर्य संस्कृति को अपनाने का प्रबल समर्थन किया। स्वामीजी ने वर्तमान समय के अध:पतन और धर्म्माचार्यों के विलासमय जीवन और हीन आचरण पर खेद प्रकट किया।

स्वामीजी के व्याख्यान सुनकर कुछ लोगों ने अपनी देवमूर्तियां मुम्बादेवी के तालाब में फेंक दीं। स्वामीजी के भक्त सेवक लाल कर्षनदास जी ने अपनी देवमूर्तियों को टाउन हाल के अद्‌भुतालय में भिजवा दिया।

वल्लभ सम्प्रदाय की तीव्र आलोचना के कारण गोकुलिये गोसांइयों के प्रमुख जीवनजी गोसाई स्वामीजी से बहुत वैर भावना रखने लगे। गोकुलिये गोसाइंयों ने स्वामीजी पर घातक आक्रमण करने के लिए कई गुण्डों की टोलियाँ बनाई जो उनके डेरे पर जाकर अथवा उनके भ्रमण काल में उनके पीछे जाकर किसी प्रकार उनकी हत्या करें। इस प्रकार की टोलियों को उन्होंने इस कार्य के सम्पन्न करने के लिए प्रचुर धन पारितोषिक के रूप में देने का प्रलोभन दिया। स्वामीजी के अदम्य तेज को देखकर किसी का साहस उन पर आक्रमण करने का न हुआ, सभी ने अपने अपराध स्वीकार कर क्षमा याचना की। उन्होंने स्वामीजी के सेवक बलदेव जी को भी प्रलोभन दिया परन्तु सफलता न मिली।

बम्बई में रहते हुए दयानन्द सरस्वती ने जहाँ अपने व्याख्यानों और दैनिक सत्सङ्गों में जनता में वैदिक सत्य सिद्धान्तों का प्रचार किया तथा प्रचलित मिथ्या विचारों और कुत्सित प्रथाओं का खण्डन किया, वहीं लेखन कार्य को भी चालू रखा।

सत्यार्थप्रकाश का लेखन तो पूर्ण हो चुका था। अब यहाँ रहते हुए वेदान्तध्वान्ति निवारण, वल्लभाचार्यमत खण्डन, स्वामिनारायणमत खण्डन नामक छोटी पुस्तकें लिखकर प्रकाशित करवा दीं। संस्कार विधि और आर्याभिविनय का लेखन आरम्भ कर दिया। ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका के लेखन का भी सूत्रपात किया।

आर्यसमाज की स्थापना

ऋषि दयानन्द ने बङ्गाल की प्रचार यात्रा में वहाँ धर्म प्रचार को स्थायी रूप देने के लिए ब्रह्मसमाज के संगठन को देखा था। बम्बई में उसी प्रकार का प्रार्थनासमाज का संगठन था। एक दिन मार्गशीर्ष सं० १९३१(ई० सन 1875) में स्वामीजी के भक्तों ने उन से विनीत भाव से निवेदन किया कि महाराज! आप हमें सच्चे वैदिक धर्म के मार्ग पर बढ़ा रहे हैं। इसे स्थायी रूप देने के लिए यदि आप एक समाज का संगठन कर दें, तो सदा के लिए जन–साधारण का बड़ा उपकार होगा।

भक्तजनों के उत्साह भरे स्नेहपूर्ण वचनों को सुनकर स्वामी जी ने कुछ समय विचार करने के उपरान्त **"आर्यसमाज"** के नाम से एक संस्था स्थापित करने की स्वीकृति प्रदान की। सभी उपस्थित जनों ने इसका अनुमोदन किया।

जहाँ धर्म के प्रचार के लिए एक संस्था की आवश्यकता होती है वहां साथ ही ऐसे धर्म–ग्रन्थ की भी आवश्यकता रहती है जो प्रचार का आधारभूत साधन हो। दयानन्द के उपदेशों का मुख्य आधार चारों वेद तथा उन्हें समझने के लिए वेदानुकूल ऋषिकृत ग्रन्थ थे। वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों और प्राचीन दर्शनों को समझने के लिए दीर्घकालीन स्वाध्याय की आवश्यकता थी। इस समय तक दयानन्द सरस्वती ने "सत्यार्थप्रकाश" नामक अपने उपदेशों का सारभूत ग्रन्थ लिखकर तैयार कर लिया था। वैदिक सिद्धान्तों को समझाने के लिए आर्यसमाज को यह अमूल्य निधि मिल गई।

भक्तजनों को आर्यसमाज की स्थापना का विचार देकर स्वामीजी प्रचार के निमित्त सूरत चले गए। सूरत से भड़ौच और अहमदाबाद होते हुए पौष वदी ५ सं० १९३१ वि० के दिन राजकोट पधारे। सभी नगरों में स्वामीजी के प्रचार का अनुपम प्रभाव पड़ा। इन नगरों में भी वैदिक सिद्धान्तों का निरूपण करते हुए वल्लभाचार्य और स्वामी नारायण मत में प्रचलित पाखण्डों का खण्डन किया।

राजकोट में काठियावाड़ के राजकुमारों को क्षत्रिय धर्म का उपदेश दिया।

राजकोट में स्वामीजी के पधारने से दो वर्ष पूर्व यहां प्रार्थना समाज की स्थापना हो चुकी थी। स्वामीजी के अमृतमय उपदेशों को सुनकर प्रार्थनासमाज के कुछ सदस्य तथा अन्य श्रोतागण बहुत प्रभावित हुए। स्वामीजी ने भक्तजनों के उत्साह को देखकर वहाँ एक आर्यसमाज की स्थापना का आदेश दिया। प्रार्थनासमाज के

सदस्यों ने प्रार्थनासमाज को ही आर्यसमाज का नाम रूप दे दिया। प्रति रविवार सत्सङ्ग तथा वेदकथा होने लगी। लेकिन पांच छः मास बाद ही कुछ कारणों से यह आर्यसमाज बन्द हो गया।

राजकोट से दयानन्द सरस्वती पुनः पौष की पूर्णमासी को अहमदाबाद पधारे। अहमदाबाद में स्वामीजी ने वेदों की प्रामाणिकता के आधार पर सब आर्यधर्मावलम्बियों को एकसूत्र में बंधे रहने के लिए अनुरोध किया। मूर्तिपूजा और बाल–विवाह का खण्डन किया। स्वामी नारायण मत की पाखंड लीला से दूर रहने का उपदेश दिया।

अहमदाबाद से भड़ौच, सूरत, बलसाढ़, बसीन रोड़, बड़ौदा तथा अहमदाबाद होते हुए स्वामीजी वापिस बम्बई पधारे। यहाँ बालकेश्वर में लालजी दलाल के बंगले में ठहरे। बम्बई आने पर स्वामीजी के व्याख्यानों का पूर्ववत् सिलसिला जारी हो गया। स्वामीजी की बम्बई की प्रथम यात्रा में उनके भक्त पुरुषों ने यहां आर्यसमाज की स्थापना का प्रस्ताव रखा था। वे उत्सुकता के साथ स्वामीजी द्वारा इस अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। भक्तजनों के अनुरोध पर श्री पानाचन्द आनन्द जी पारीख को स्वामीजी के आदेश के अनुसार आर्यसमाज के नियमों की रूपरेखा के निर्माण का कार्य सौंपा गया। स्वामी जी ने श्री पानाचन्द जी द्वारा प्रस्तुत नियमों में उचित संशोधन कर स्वीकृति प्रदान की।

चैत्र सुदी प्रतिपदा शनिवार सं० १९३२ वि० तदनुसार १० अप्रैल सन् १८७५ ई० के दिन सांयकाल के समय गिरगांव में डा० माणिकचन्द जी की वाटिका में आर्यसमाज की स्थापना की गई। इस में आर्यसमाज के निम्नलिखित २८ नियम स्वीकृत किये गए।

१. सब मनुष्यों के हितार्थ आर्यसमाज का होना आवश्यक है।

२. इस समाज में मुख्य स्वतःप्रमाण वेदों को ही माना जाएगा। साक्षी के लिए, वेदों के ज्ञान के लिए और इतिहास के लिए शतपथ आदि ब्राह्मण, छः वेदाङ्ग, चार उपदवेद, छः दर्शन और ११२७ वेदों की व्याख्यान रूप शाखाएं। इन आर्ष ग्रन्थों को भी वेदानुकूल होने से गौण प्रमाण माना जाएगा।

३. इस समाज में प्रतिदेश के मध्य एक प्रधान समाज होगा और दूसरे शाखा

प्रतिशाखा समझे जाएंगे।

४. सब समाजों की व्यवस्था प्रधान समाज के अनुकूल ही रहेगी।

५. प्रधान समाज में सत्योपदेश के लिए संस्कृत और आर्यभाषा में नाना प्रकार के ग्रन्थ रहेंगे और एक साप्ताहिक पत्र "आर्यप्रकाश" निकलेगा। ये सब समाजों में प्रवृत्त किये जायेंगे।

६. प्रत्येक समाज में एक प्रधान पुरुष, दूसरा मन्त्री तथा अन्य पुरुष और स्त्री सब सभासद होंगे।

७. प्रधान पुरुष इस समाज की व्यवस्था का यथावत् पालन करेगा और मन्त्री सबके प्रश्नों के उत्तर तथा सब के नाम व्यवस्था लेख करेगा।

८. इस समाज में सत्पुरुष, सदाचारी और परोपकारी सभासद बनाए जाएंगे।

९. प्रत्येक गृहस्थ सभासद को उचित है कि वह अपने गृहकृत्य से अवकाश पाकर जैसे घर के कामों में पुरुषार्थ करता है उससे अधिक पुरुषार्थ इस समाज की उन्नति के लिए करे और विरक्त तो नित्य ही इस समाज की उन्नति में तत्पर रहें।

१०. प्रत्येक सप्ताह में एक दिन प्रधान, मन्त्री और सभासद समाज स्थान में एकत्रित हों। सब कामों से इस काम को मुख्य जानें।

११. एकत्रित होकर सर्वथा स्थिर चित्त हों, पक्षपात छोड़कर परस्पर प्रीति से प्रश्नोत्तर करें। फिर सामवेद–गान, परमेश्वर, सत्य धर्म, सत्य नीति, सत्योपदेश के विषय में ही बाजे आदि से गान और इन्हीं विषयों पर मन्त्रों का अर्थ और व्याख्यान हो। फिर गान, फिर मन्त्रों का अर्थ और फिर गान आदि।

१२. प्रत्येक सभासद न्यायपूर्वक पुरुषार्थ से जितना धन प्राप्त करे, उसमें से शतांश आर्यसमाज, आर्य विद्यालय और आर्यप्रकाश पत्र के प्रचार और उन्नति के लिए आर्यसमाज के कोष में दे।

१३. जो मनुष्य इन कार्यों की उन्नति और प्रचार के लिए जितना प्रयत्न करे उसका उतना ही अधिक सत्कार उत्साह वृद्धि के लिए होना चाहिये।

१४. इस समाज में वेदोक्त प्रकार से अद्वितिय परमेश्वर की ही स्तुति प्रार्थना और उपासना की जाएगी। स्तुति निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, दयालु, सर्वाधार, सच्चिादानन्द, आदि विशेषणों से

परमात्मा का गुण कीर्ति करना; प्रार्थना–सर्वश्रेष्ठ कार्यों में उससे साहाय्य चाहना; उपासना–उसके आनन्दस्वरूप में मग्न हो जाना। सो पूर्वोक्त लक्षणयुक्त परमात्मा की ही भक्ति करनी चाहिये उसको छोड़कर अन्य किसी का आश्रय नहीं लेना चाहिए।

१५. इस समाज में निषेकादि अन्त्येष्टि पर्यन्त संस्कार वेदोक्त किये जाएंगे।

१६. आर्य विद्यालय में वेदादि सनातन आर्य ग्रन्थों का पठन-पाठन हुआ करेगा; और सब स्त्री पुरुषों को वेदोक्त रीति से शिक्षा दी जायगी।

१७. इस समाज में स्वदेश के हितार्थ दो प्रकार की शुद्धि के लिए प्रयत्न किया जाएगा। एक परमार्थ, दूसरे व्यवहार। इन दोनों का शोधन तथा संसार के हित की उन्नति की जायगी।

१८. इस समाज में न्याय पक्षपात से रहित और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से यथावत् परीक्षित सत्यधर्म वेदोक्त ही माना जाएगा। इससे विपरीत कदापि नहीं।

१९. इस समाज की ओर से श्रेष्ठ विद्वान् लोग सदुपदेश करने के लिए समयानुकूल सर्वत्र भेजे जाएँगे।

२०. स्त्री पुरुष इस दोनों के विद्याभ्यास के लिए यथासम्भव प्रत्येक स्थान में आर्य विद्यालय पृथक्-पृथक् बनाए जाएँगे। स्त्रियों की पाठशाला में अध्यापिका आदि का सब प्रबन्ध स्त्रियों द्वारा ही किया जाएगा और पुरुषों की पाठशाला में पुरुषों द्वारा, इसके विरुद्ध नहीं ।

२१. इन पाठशालाओं की व्यवस्था प्रधान आर्यसमाज के अनुकूल पालन की जायगी।

२२. इस समाज में प्रधान आदि सब सभासदों को परस्पर प्रीतिपूर्वक अभिमान, हठ, दुराग्रह और क्रोध आदि दुर्गुणों को छोड़कर उपकार और सुहृद्भाव से निर्वैर होकर स्वात्मवत् सब के साथ वर्तना होगा।

२३. विचार के समय सब व्यवहार में जो न्याययुक्त सर्वहित साधक सत्य बात स्थिर हो वह सभासदों पर प्रकाशित करके वही बात मानी जाए।

२४. जो मनुष्य इन नियमों के अनुकूल आचरण करने वाला, धर्मात्मा, सदाचारी हो उसको उत्तम सभासदों में प्रविष्ट करना, इसके विपरीत साधारण समाज में रखना और अत्यन्त प्रत्यक्ष दुष्ट को समाज से निकाल देना। परन्तु यह काम पक्षपात से नहीं

करना, किन्तु ये दोनों काम श्रेष्ठ सभासदों के विचार से ही किए जाएं अन्यथा नहीं।

२५. आर्यसमाज, आर्यविद्यालय, आर्यप्रकाश पत्र और आर्य समाज का कोष इन चारों की रक्षा और उन्नति प्रधान आदि सब सभासद तन–मन–धन से किया करें।

२६. जब तक नौकरी करने और कराने वाला आर्यसमाजस्थ मिले तब तक और नौकरी न करे और न किसी अन्य को नौकर रखे। ये दोनों परस्पर स्वामी–सेवक भाव से यथावत् वर्तें।

२७. जब विवाह, जन्म, मरण अथवा अन्य कोई दान करने का अवसर उपस्थित हो, तब सब आर्यसमाज के निमित्त धन आदि दान किया करें। ऐसा धर्म का काम दूसरा कोई नहीं है, ऐसा समझकर इसको कभी न भूलें।

२८. इन नियमों में से यदि कोई नियम घटाया बढ़ाया जाएगा तो सब श्रेष्ठ सभासदों के विचार से ही सब को विदित करके ऐसा करना होगा।

इस प्रकार यह प्रथम आर्यसमाज की स्थापना थी जहाँ आर्य समाज के नियमों का विधिवत् निर्माण कर इसे प्रारम्भ किया गया। प्रति शनिवार को आर्यसमाज का साप्ताहिक सत्सङ्ग होने लगा। प्रारम्भ में सौ के लगभग आर्य सदस्यों की संख्या थी। १० अप्रैल को आर्यसमाज की स्थापना हुई। १७ अप्रैल तथा २४ अप्रैल को आर्यसमाज में स्वामी जी के व्याख्यान हुए।

आर्य सदस्यों ने स्वामीजी से विनयपूर्वक प्रार्थना की कि महाराज! आप कृपा करके इस आर्यसमाज के अधिनायक अथवा प्रधान पद को स्वीकार करें। स्वामीजी ने किसी प्रकार का पद ग्रहण करना स्वीकार न किया। इस आर्यसमाज के साधारण सभासदों की सूची में अपना नाम अङ्कित करवा दिया तथा मासिक चन्दा नियमानुसार देते रहे। ये थी ऋषि की महानता, संन्यासी का कर्त्तव्य, लोकैष्णा से मुक्त भाव।

यहाँ रहते हुए दयानन्द सरस्वती ने संस्कारविधि तथा आर्याभिविनय भी मुद्रित करवाकर प्रचारित कर दिया।

हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ने दयानन्द सरस्वती का फोटो लेने के लिए उनसे आग्रह किया। दयानन्द सरस्वती ने इस पर आशङ्का प्रकट की कि ऐसा न हो कि उनका फोटो आर्यसमाज में उनकी प्रतिकृति की पूजा का रूप धारण कर ले? फोटो लेने की आज्ञा तो दे दी, पर साथ ही हरिश्चन्द्र चिन्तामणि को आदेश दिया कि उनके

फोटो की प्रतिष्ठा आर्यसमाज मन्दिर में नहीं होनी चाहिए।

पूना में जज व प्रसिद्ध समाज–सुधारक महादेव गोविन्द रानाडे तथा महादेव मोरेश्वर कुण्टे के निमन्त्रण पर दयानन्द सरस्वती बम्बई से पूना पधारे। स्वामीजी के प्रति इनकी परम श्रद्धा थी।

पूना में शङ्कर सेठ के मकान में स्थान ग्रहण किया। यहाँ स्वामीजी के पचास व्याख्यान हुए। पन्द्रह व्याख्यान पूना नगर में तथा शेष वहां के कैम्प में। शिक्षित जनसमुदाय पर इन व्याख्यानों का आकर्षक प्रभाव पड़ा। ये सभी व्याख्यान रानाडे महोदय ने मुद्रित करवा दिये। इन में पन्द्रह व्याख्यानों का हिन्दी में अनुवाद भी प्रकाशित किया गया जो सर्वत्र उपलब्ध है।

पूना से सतारा होते हुए दयानन्द सरस्वती पुनः बम्बई पधारे। बम्बई में कुछ समय रहकर बड़ौदा के लिए प्रस्थान किया। बड़ौदा में गोविन्दराम रोडिया की धर्मशाला में स्थान ग्रहण किया। यहां स्वामीजी के निवास का प्रबन्ध राज्य की ओर से वहां के दीवान सर टी० माधव राव ने किया।

स्वामीजी के व्याख्यानों का प्रबन्ध धर्मशाला में ही किया गया। राज्य के सभी प्रमुख कर्मचारी तथा अन्य शिक्षित जन उत्सुकता के साथ व्याख्यान सुनने आते थे। व्याख्यानों के विषय मुख्यतः देशोन्नति, वेद के अध्ययन का अधिकार, राजधर्म, ब्रह्मचर्य तथा बाल विवाह का निषेध थे।

बड़ौदा से पुनः बम्बई पधारे। यहां प्रथम व्याख्यान वेदों की श्रेष्ठता पर हुआ। इस व्याख्यान में संस्कृत के प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् प्रो० मोनियर विलियम्स भी उपस्थित थे। उन पर स्वामीजी की विद्वत्ता का गम्भीर प्रभाव पड़ा। व्याख्यान के उपरान्त दोनों वैदिक विद्वानों का परस्पर संस्कृत में वर्तालाप हुआ। प्रो० मोनियर विलियम्स ने स्वामीजी की विद्वत्ता और व्याख्यान शैली की बहुत प्रशंसा की।

बम्बई से दयानन्द सरस्वती इन्दौर पधारे। यहां तालबाग में निवास किया। इन्दौर में स्वामीजी के व्याख्यानों का श्रवण करने के लिए राजकर्मचारी तथा जनसाधारण बड़ी संख्या में आते थे। एक व्याख्यान में महाराजा तुकोजी राव भी पधारे व स्वामीजी की ओजस्विनी वाणी से अत्यन्त प्रभावित हुये। एक दिन राजभवन में निमन्त्रित कर उनसे राजनीति के विषय में उपदेश भी ग्रहण किया।

दिल्ली-दरबार के समय एकता का प्रयास

इन्दौर से दयानन्द सरस्वती फर्रुखाबाद होते हुए ज्येष्ठ शुक्ला ४ सं० १९३३(ई० सन 1876) को काशी पधारे। यहां इस बार वेदभाष्य के लेखन के विषय में चिन्तन करते रहे। फर्रुखाबाद से संस्कृत के विद्वान् पं० भीमसेन को काशी में बुलवाया। भाद्रपद कृष्णा १४ सं० १९३३ वि०(ई० सन 1876) तक काशी में रहे। यहीं ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के मुद्रण का प्रबन्ध लाजरस कम्पनी के मुद्रणालय में किया। वेदभाष्य विषयक कुछ विज्ञापन भी प्रचारार्थ मुद्रित कराए।

काशी से जौनपुर, अयोध्या, लखनऊ, शाहजहांपुर, बरेली होते हुए मुरादाबाद पधारे। मुरादाबाद में धर्मप्रचार तथा आर्यसमाज की स्थापना करने के पश्चात् जलेसर और अलीगढ़ होते हुए दिसम्बर के अन्तिम दिनों में दिल्ली पहुँचे।

विक्रमी संवत् १९३३(एक जनवरी सन् १८७७) के दिन उस समय के भारत के गवर्नर जनरल लार्ड लिटन ने दिल्ली में एक दरबार का आयोजन किया था। इस दरबार में भारत के सब राजा महाराजा, सभी प्रान्तों के गवर्नर, लैफ्टिनैण्ट गवर्नर तथा देश के सभी प्रतिष्ठित पुरुषों ने आना था। इस दरबार में महारानी विक्टोरिया को भारत की राजराजेश्वरी घोषित किया जाना था।

दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म के प्रचार का यह अच्छा अवसर समझा और दिल्ली प्रस्थान का निश्चय किया। स्वामीजी के भक्त ठाकुर मुकुन्दसिंह ने अलीगढ़ से तम्बू खेमे भिजवा कर कुतुबरोड़ स्थित शेरमल के अनारबाग में स्वामीजी महाराज के डेरे का प्रबन्ध किया। स्वामीजी के साथ ठा० मुकुन्दसिंह के अतिरिक्त कर्णवास के धनपति ठा० गोपाल सिंह, ठा० भूपाल सिंह तथा ठा० किशनसिंह आदि भी दिल्ली पधारे।

उनके निवास द्वार पर "स्वामी दयानन्द सरस्वती का निवास स्थान" का बोर्ड लगाया गया। स्वामीजी के साथ प० भीमसेन तथा मुरादाबाद के पं० इन्द्रमणि भी थे।

दयानन्द सरस्वती ने सब को एकत्र होकर सत्यासत्य का निर्णयकर एक सार्वभौम धर्म स्थापित करने के निमित्त विज्ञापन द्वारा आह्वान किया। यह विज्ञापन सभी मतों के विद्वान् नेताओं और राजा महाराजाओं में प्रचारित किया।

राजा महाराजा तथा धनपतियों का तो ध्यान लार्ड लिटन की आराधना करने

की ओर था। वही उनके लिए आज देवाधिदेव महादेव थे। डुमरांव के राजा तथा इन्दौर के महाराज स्वामीजी के दर्शनार्थ अवश्य आए।

विज्ञापन से स्वामीजी के आगमन की धूम दिल्ली में सर्वत्र फैल गई। पण्डित जन उनके डेरे पर आकर शास्त्र-चर्चा और विचार विनियम करते रहे। एक दिन एक ईरानी मौलवी भी आए।

स्वामीजी के प्रयत्न करने पर एक दिन उनके निवास स्थान पर प्रसिद्ध समाज-सुधारकों का सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में बाबू केशवचन्द्र सेन बंगाल में ब्रह्मसमाज के प्रसिद्ध नेता थे। बाबू नवीन चन्द्र राय पंजाब में ब्रह्मसमाज के सर्वोपरि प्रचारक थे। मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी पंजाब में हिन्दू समाज के सुधारकों में प्रमुख समझे जाते थे। सर सैय्यद अहमद अच्छे लेखक, प्रभावशाली वक्ता, मुसलमानों के प्रतिभाशाली मान्य पुरुष थे। सर सैय्यद अहमद ही अलीगढ़ में मुस्लिम यूनिर्सिटी के प्रर्वतक थे। बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि बम्बई में स्वामीजी के परमभक्त बन चुके थे। पं० इन्द्रमणि इस्लाम धर्म के ख्यातिप्राप्त विद्वान् थे, जो मुसलमानों द्वारा हिन्दू धर्म पर किये जाने वाले आक्षेपों के तर्क-पूर्ण समाधान करने के लिए प्रसिद्ध हो चुके थे।

सभी महानुभावों में बहुत समय तक विचार-विनियम होता रहा। पर वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानने पर सब सहमत न हो सके। दयानन्द सरस्वती वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानने पर अटल रहे। इस प्रकार स्वामीजी का यह प्रयास फलीभूत न हो सका।

दिल्ली निवास के समय स्वामीजी के तेजस्वी रूप का दर्शन और ओजस्विनी वाणी का श्रवण कर पंजाब से आये सज्जन बहुत प्रभावित हुए। मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी, सरदार विक्रमसिंह अहलूवालिया, पं० मनफूल तथा मुंशी हरसुखराय ने स्वामीजी से पंजाब में पधार कर वेदोपदेश देने के लिए प्रार्थना की। महाराज ने सहर्ष स्वीकृति प्रदान की।

चांदपुर मेले में शास्त्रार्थ

दिल्ली से मेरठ और सहारनुपर होते हुए दयानन्द सरस्वती शाहजहांपुर पधारे। शाहजहांपुर जिले के चांदपुर गांव में मुंशी प्यारेलाल और मुक्ताप्रसाद जमींदार थे। ये जाति के कायस्थ थे। इनके पिता कबीरपन्थी थे। ये दोनों भी कबरीपन्थ के

अनुयायी थे। इस गांव में पादरी लोग भी आकर अपने धर्म का प्रचार करते रहते थे। मुसलमान तो इस देश के अंग बन ही चुके थे। मुंशी प्यारेलाल और मुक्ताप्रसाद दोनों भाइयों की ईसाई पादरियों और मुसलमान मौलवियों के साथ धर्मविषयक चर्चा चलती रहती थी। बड़े भाई मुक्ताप्रसाद का झुकाव दयानन्द सरस्वती के विचारों की ओर हो रहा था। इन दोनों भाइयों ने सत्यता परखने लिए एक मेला "ब्रह्मविचार" की योजना बनाई। इसमें ईसाई, मुसलमान और आर्यों के प्रतिनिधियों को आमन्त्रित किया गया।

मुसलमानों के प्रतिनिधि के रूप में देवबन्द से भारत प्रसिद्ध मौलवी मुहम्मद कासिम आए। उनके सहायक के रूप में दिल्ली से सैय्यद अब्दुल मंसूर बुलवाए गए। ईसाईयों की ओर से बरेली से रैवरेण्ड टी० जी० स्काट पधारे। इन्होंने ईसाई धर्म पर कुछ पुस्तिकाएं तथा बाईबल पर एक टीका भी लिखी थी। रैवरैण्ड नेबिल, रैवरैण्ड पार्कर, रैवरैण्ड जोहन थॉमसन तथा कुछ अन्य पादरियों को इनकी सहायतार्थ बुलवाया गया। वैदिक धर्म सिद्धान्तों के निरूपण के लिए दयानन्द सरस्वती को आमन्त्रित किया गया। मुंशी (पण्डित) इन्द्रमणि इनके साथ थे।

दयानन्द सरस्वती चाहते थे कि मेला दो सप्ताह चले ताकि प्रत्येक धर्म के विद्वान् अपने धर्म के सभी सिद्धान्तों पर पूरी तरह प्रकाश डाल सकें। श्रोतागण भी सबके मतों को सुचारु रूप से सुनने के बाद अपने विचार निश्चित कर सकें। परन्तु यह मेला दो दिन से अधिक न हो सका। अन्य धर्मानुयायी अधिक समय यहां ठहरने के लिए सहमत न हुए। मेले में पाँच विषयों पर विचार विमर्श करने का निश्चय हुआ : –

१. ईश्वर ने जगत् को किस वस्तु से, किस समय और किस अभिप्राय से रचा ?
२. ईश्वर सर्वव्यापी है या नहीं ?
३. ईश्वर न्यायकारी तथा दयालु किस प्रकार है ?
४. वेद, बाईबल तथा कुरान के ईश्वरीय ज्ञान होने में क्या प्रमाण है ?
५. मुक्ति का स्वरूप क्या है ? मुक्ति की प्राप्ति के साधन क्या हैं ?

मेले की तिथियाँ १९, २० मार्च सन् १८७७ ई०(विक्रमी संवत् १९३४) निश्चित की गईं।

१९ मार्च को एक बजे मेले का प्रारम्भ हुआ। सर्वप्रथम मुंशी प्यारेलाल ने ईश्वर को धन्यवाद दिया, उसके बाद स्थानीय मजिस्ट्रेट को धन्यवाद दिया, जिसने

इस मेले के आयोजन की आज्ञा प्रदान की। प्रथम दिन निश्चित प्रश्नों पर कोई विशेष विचार विमर्श न हुआ। मौलवी मुहम्मद कासिम और पादरी नेबिल की कुरान और बाईबल के ईश्वरीय ज्ञान मानने पर परस्पर कुछ आलोचना होती रही।

२० मार्च सन् १८७७ की प्रातः साढ़े सात बजे प्रथम प्रश्न पर विचार आरम्भ हुआ।

पादरी स्काट ने कहा कि हम निश्चित रूप से तो नहीं कह सकते कि इस विश्व को परमेश्वर ने किस तत्व से बनाया? कब बनाया? और किस प्रयोजन से बनाया? केवल इतना ही कह सकते हैं कि परमेश्वर ने हमारे सुख के निमित्त इस सृष्टि को अपने हुक्म से अभाव से भावरूप में ला दिया।

मौलवी मुहम्मद कासिम ने कहा–खुदा ने दुनिया को वजूदे खास (अपने स्वरूप) से प्रकट किया। दुनिया की सब चीजें मनुष्य के लिए बनाईं। मनुष्य को अपनी इबादत के लिए बनाया। कब बनाया? इसके जानने की हमें कोई जरूरत नहीं। हमें तो केवल संसार के सुखोपभोग से मतलब है। कब रोटी बनाई? इससे हमें कोई मतलब नहीं। हमें तो रोटी खाने से मतलब है।

दयानन्द सरस्वती ने उपस्थित धर्माधिकारियों और जनता को सम्बोधित करते हुए कहा कि सत्यासत्य का निर्णय करने के लिए परस्पर वैर–विरोध छोड़कर संवाद करना विद्वानों का कर्त्तव्य है। प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वामीजी ने बताया कि परमात्मा ने अव्यक्त प्रकृति से सृष्टि को उत्पन्न किया। प्रकृति सृष्टि का उपादान कारण है। प्रकृति अनादि है। अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं हो सकती। वजूदे खास (अपने स्वरूप) से भी सृष्टि की उत्पत्ति नहीं मानी जा सकती। यदि ऐसा माना जाए तो सृष्टि का रूप भी परमेश्वर के रूप के समान होना चाहिए। प्रत्येक कार्य अपने कारण के समान गुणों वाला होता है। इस प्रकार संसार में जितने कपटी, चोर, व्यभिचारी और हत्यारे हैं वे भी परमात्मा के रूप हो जाएंगे।

"सृष्टि कब बनी ?" इसका उत्तर प्रत्येक वैदिक धर्मानुयायी पण्डित शुभ कर्म से प्रारम्भ में संकल्प का उच्चारण करते हुए देता है। वह वर्ष, मास और दिनों की गणना करता हुआ यजमान से संकल्प का पाठ करवाता है। इसके अनुसार १९६०८५२९७६ वर्ष सृष्टिक्रम को हो चुके हैं। २३५९१४७०२४ वर्ष सृष्टि और रहेगी।

परमेश्वर जीव के कर्मों के अनुसार उसे नाना योनियों तथा भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में जन्म देता है। परमेश्वर सृष्टि का निमित्त कारण, नियामक अधिष्ठाता है। सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय क्रम-प्रवाह से अनादि है।

सृष्टि के रचने की शक्ति परमेश्वर में स्वाभाविक है। वह अपने सामर्थ्य से सृष्टि का निर्माण इसलिये करता है कि मनुष्य शुभ कर्म करते हुए धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को सिद्धकर परमानन्द को उपलब्ध करे।

इस प्रकार प्रथम प्रश्न का विवेचन करने के अनन्तर स्वामीजी ने पादरियों और मौलवियों की शंकाओं का तर्क द्वारा सन्तोषजनक समाधान किया। स्वामीजी की तेजोमयी वाणी श्रवण करते हुए जनसमुदाय शान्त भावना से परमसन्तोष और आह्लाद का अनुभव कर रहा था। दिन के ग्यारह बजे सभा की कार्यवाही कुछ समय के लिए स्थगित हुई।

दोपहर को पुनः सभा का आरम्भ हुआ। आज का दिन ही यह मेला चालू रहना था। सब विषयों पर विचार-विमर्श हो नहीं सकता था। सर्वसम्मति से यह निश्चय किया गया कि पंचम प्रश्न पर ही परस्पर वार्तालाप हो।

सर्वप्रथम दयानन्द सरस्वती ने अपने वक्तव्य में कहाः- मुक्ति का अर्थ है "छूट जाना"। सब दुःखों से छूटकर सच्चिदानन्द परमात्मा को प्राप्तकर सदा आनन्द में रहना और फिर जन्ममरण के चक्र में चिरकाल तक न गिरना ही मुक्ति है।

मुक्ति का प्रथम साधन सत्याचरण है।

द्वितीय साधन—सत्यविद्या, ईश्वरकृत वेद विद्या का यथावत् स्वाध्याय कर ज्ञान को प्राप्त करना और उसके अनुकूल आचरण करना।

तृतीय साधन—सत्संग। आचारवान् ज्ञानी पुरुषों की संगति करना।

चतुर्थ साधन—योगाभ्यास द्वारा अपने मन और इन्द्रियों को संयत कर आत्मा को असत्य से निकाल कर सत्य में स्थापित करना।

पंचम साधन—ईश्वर स्तुति=ईश्वर के गुणों का श्रवण और मनन करना।

षष्ठ साधन—ईश्वर प्रार्थना=जब कोई व्यक्ति सच्चे हृदय से ईश्वर का भजन करता है तो करुणानिधान प्रभु उसे परमानंद में स्थिर कर देता है। धर्म, अर्थ, काम और सत्पुरुषार्थ से ही मुक्ति प्राप्त होती है, अन्यथा नहीं।

पादरी साहब ने अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा–दु:खों से छूटने का नाम मुक्ति नहीं। पापों से बचने और स्वर्ग में पहुँचने का नाम मुक्ति है। परमात्मा ने आदम को पवित्र बनाया था। शैतान ने उसे बहकाकर पाप की ओर प्रवृत्त कर दिया। उसकी सन्तान आदमी भी पाप की ओर प्रवृत्त हो गया। ईसा मसीह पर विश्वास करने से पापों से छुटकारा और मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

मौलवी साहब ने कहा–ईश्वर जिसको चाहता है मुक्ति प्रदान करता है। जिसको नहीं चाहता उसे मुक्ति नहीं मिल सकती। मुक्ति ईश्वरीय इच्छा पर निर्भर है। हाकिम जिस आदमी से प्रसन्न हो जाता है उसे अपराध से क्षमादान कर देता है, जिससे अप्रसन्न रहता है उसे दण्ड देता है। हाकिम पर विश्वास रखना चाहिए। हाकिम पैगम्बर साहब हैं। उन पर विश्वास रखने से अल्लाह प्रसन्न रहेंगे और मनुष्य मुक्ति को पा सकेगा।

अन्त में स्वामीजी ने प्रभावशाली तर्क और ओजस्विनी वाणी द्वारा ईसाई और मुसलमानों के मतों का खण्डन करते हुए वैदिक मत की सत्यता का प्रतिपादन किया। श्रोतागण स्वामीजी के भाषण का श्रवण कर तथा वैदिकमत की श्रेष्ठता हो हृदयंगम कर परम हर्षित मन से उनके प्रति नतमस्तक होने लगे।

पंजाब की ओर प्रस्थान

चांदपुर से दयानन्द सरस्वती सहारनपुर होते हुए वैशाख कृष्णा ५ सं० १९३४ (३१ मार्च सन् १८७७) के दिन लुधियाना पधारे। लुधियाना में मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी दयानन्द सरस्वती के भक्त थे। दिल्ली दरबार के समय स्वामीजी के दरबार में उपस्थित सुधारकों में अलखधारी भी विद्यमान थे। वे पंजाब के हिन्दू धर्म के सुधारकों में प्रमुख समझे जाते थे। कुलियात–ए–अलखधारी नामक पुस्तक के रूप में इन्होंने अपने लेख प्रकाशित किये थे। इनमें अलखधारी ने नीचे लिखे शब्दों में अपने भाव प्रकट किये थे–

"जो हिन्दू अपने आपको प्राचीन शास्त्रों का भक्त रखना चाहते हैं वे अगर किसी को अपना गुरु बनाना चाहें......या किसी समस्या के समाधान के इच्छुक हों तो. ....केवल एक दयानन्द सरस्वती है।" अलखधारी के लेखों से पंजाब की शिक्षित हिन्दू धर्मप्रेमी जनता में दयानन्द सरस्वती के दर्शन और उपदेश श्रवण की परम

उत्सुकता थी।

लुधियाना में अलखधारी ने स्वामीजी का परम सम्मान के साथ स्वागत किया। लाला वंशीधरजी के बाग में स्वामी जी के निवास का प्रबन्ध किया गया। जटमल खजांची के मकान पर व्याख्यानों का प्रबन्ध किया। सहस्रों व्यक्तियों ने व्याख्यानों का लाभ उठाया। यहाँ रामशरण नामक ब्राह्मण जो कुछ समय पूर्व ईसाई हो चुका था। वह एक ईसाई स्कूल में अध्यापक था। स्वामीजी के उपदेशामृत के पान से उनके हृदयमें वैदिक धर्म के प्रति श्रद्धा का अंकुर उत्पन्न हुआ। स्वामीजी ने पुनः उसे अपने धर्म में वापसी करा दी।

वैशाख सुदी ६ सं० १९३४ (१९ अप्रैल सन् १८७७) के दिन स्वामीजी महाराज लाहौर पधारे। रेलवे स्टेशन पर पं० मनफूल भूतपूर्व मीर मुंशी पंजाब सरकार, मुंशी हर सुखराम, कोहनूर पत्र के अध्यक्ष, तथा ब्रह्मसमाज और सत्यसभा के कुछ सदस्य स्वागत के लिए उपस्थित थे।

दीवान रतनचन्द दाढ़ीवाले के बाग में स्वामीजी के निवास का प्रबन्ध किया गया।

ब्रह्मसमाज के नेताओं का स्वामीजी को लाहौर बुलवाने का अभिप्राय उन्हें अपने समाज का सदस्य बनाकर ब्रह्मसमाज की शक्ति बढ़ाने का था। वे इसमें सफल न हुए। स्वामीजी सत्यवक्ता थे। वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानने के सिद्धान्त पर ब्रह्मसमाजी उनसे सहमत न थे।

स्वामीजी के व्याख्यानों का प्रबन्ध बावली साहब में किया गया। अपने व्याख्यानों में स्वामीजी महाराज ने वेद के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए बतलाया कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है। वेदों के पढ़ने का अधिकार मनुष्यमात्र को समान रूप से है। देव कोई अलग योनि नहीं है। विद्वान् और आचारवान् पुरुष देव कहलाते हैं। वेद में जो अलंकार आए हैं, पुराणों में उन्हें कहानियों का रूप दे दिया है। यदि उन अलंकारों को समझने का प्रयत्न किया जाए तो रहस्यमय सत्य का प्रकाश होता है। वेद में वर्णव्यवस्या गुणकर्मानुसार प्रतिपादित है, जन्म से नहीं। इसी जन्म में गुणकर्मानुसार वर्ण परिवर्तन हो सकता है। एक वर्ण दूसरे वर्ण के हाथ का पकाया हुआ भोजन न खाए, ऐसा प्रतिबन्ध वेदों में कहीं नहीं है। बाल विवाह वेदों तथा प्राचीन शास्त्रों के

विरुद्ध है व बाल विवाह से राष्ट्र को बड़ी ही हानि उठानी पड़ी है, मनुष्य जाति के लिए हानिकारक है। मूर्तिपूजा वेद विरुद्ध है। एक निराकार, अजन्मा, अनन्त ईश्वर की आराधना मनुष्यमात्र को करनी चाहिये।

स्वामीजी की तर्कपूर्ण ओजस्विनी वाणी का श्रवणकर शिक्षित जनसमुदाय में वेदों तथा प्राचीन शास्त्रों के प्रति श्रद्धा का संचार होने लगा। ब्रह्मसमाज के नेता पौराणिक पन्थी पुरोहित दीवान रतनचन्द दाढ़ी वाले के पुत्र दीवान भगवानदास के पास पहुँचे। दयानन्द सरस्वती को अपनी कोठी से निकालने का अनुरोध किया। दीवान भगवानदास उनके कहने में आ गए। स्वामीजी से अपने निवास का अन्यत्र प्रबन्ध करने के लिए निवेदन किया। स्वामीजी निर्भय सत्यवक्ता थे। उनके मन में भय और चिन्ता का स्थान न था। उसी समय वे वहाँ से चल पड़े।

खान बहादुर डा० रहीमखां ने सहर्ष दयानन्द सरस्वती के निवास का प्रबन्ध अपनी कोठी में कर दिया और सत्य के प्रचार में अपना सहयोग दिया। अब यहीं स्वामीजी के व्याख्यान होने लगे। श्रद्धालु जनों की संख्या में प्रतिदिन वृद्धि होने लगी।

एक दिन पं० मनफूल ने स्वामीजी महाराज से निवेदन किया—महाराज, यदि आप मूर्तिपूजा का खण्डन न करें तो कश्मीर नरेश आप से बहुत प्रसन्न होंगे। महाराज ने उत्तर दिया कि—मैं महाराज कश्मीर को प्रसन्न करने का प्रयत्न करूं या वेदों में प्रतिपादित ईश्वर की आज्ञा का पालन कर उस विश्वपति परमपिता को प्रसन्न करूँ ?

डा० रहीमखां की कोठी पर ईसाई पादरियों के साथ भी स्वामी जी का वार्तालाप हुआ। उन्हें महाराज ने अश्वमेध आदि यज्ञों के स्वरूप को समझाते हुए बतलाया कि इनमें पशुवध का कहीं प्रतिपादन नहीं।

दो मास तक निरन्तर स्वामीजी के व्याख्यानों और भक्तजनों की शंकाओं के समाधान का यह परिणाम हुआ कि जनसाधारण भी वैदिक धर्म की ओर आकृष्ट होने लगा। कुछ मूर्तिपूजकों ने अपने घरों में रखी हुई मूर्तियां रावी नदी में फेंक दीं।

जो नवशिक्षित जनसमुदाय हिन्दू धर्म की कुरीतियों को देखकर ईसाई धर्म की ओर झुक रहा था, उनके मन में वैदिक शास्त्रों के प्रति पुनः श्रद्धा की भावना जागृत हुई और इस प्रकार एक बहुत बड़ा वर्ग ईसाई होने से बच गया।

भक्तजनों ने दयानन्द सरस्वती से लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना के लिए

विनयपूर्वक प्रार्थना की। महाराज ने प्रसन्न होकर उनके प्रस्ताव को स्वीकृत किया।

ज्येष्ठ शुक्ल १३ सं० १९३४ (२४ जून सन् १८७७) के दिन लाहौर में डा० रहीमखां की कोठी पर आर्यसमाज की स्थापना हुई। सर्वप्रथम ईश्वरोपासना और हवन किया गया। उसके अनन्तर विधिवत् आर्यसमाज की स्थापना की घोषणा की गई।

आर्य समाज के दस नियम

बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना के अवसर पर आर्यसमाज के अट्ठाइस नियम प्रचारित किये गए थे। यहां उन में संशोधन कर दस नियमों को स्वीकार किया गया। यही दस नियम आर्यसमाज में प्रवेश के लिए स्थायी नियम हैं। आर्यसमाज के दस नियम ये हैं :

१. सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिएं।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना

चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें।

ब्रह्मसमाज के सदस्यों ने दयानन्द सरस्वती से निवेदन किया कि यदि आप तृतीय नियम का निराकरण कर दें तो हम भी आर्यसमाज में सम्मिलित हो सकेंगे। स्वामीजी महाराज ने उनके इस निवेदन को स्वीकार नहीं किया क्योंकि वेद की नित्यता, सत्यता के साथ वे कोई समझौता नहीं कर सकते थे। यह थी स्वामी जी की सत्य के प्रति दृढ़ता।

पांच जुलाई सन् १८७७(संवत् 1934) के दिन दयानन्द सरस्वती लाहौर से अमृतसर पधारे। यहाँ अंग्रेजी दैनिक ट्रिब्यून के संस्थापक सरदार दयालसिंह मजीठिया ने स्वामीजी के निवास का प्रबन्ध मियां मुहम्मद जान रईस की कोठी पर किया। यहाँ भी नित्य व्याख्यान और शंका समाधान होते रहे। बारह अगस्त सन् १८७७ के दिन अमृतसर में भी आर्यसमाज की स्थापना हो गई। यहीं पर पन्द्रह अगस्त सन् १८७७ के दिन आर्योद्देश्यरत्नमाला की रचना समाप्त हुई।

अमृतसर से श्रावण शुक्ला ९ सं० १९३४ (१८ अगस्त सन् १८७७) के दिन स्वामीजी महाराज गुरुदासपुर पधारे। कुछ दिन प्रचार कार्य के प्रभाव से २४ अगस्त सन् १८७७ के दिन गुरुदासपुर में आर्यसमाज की स्थापना हो गई।

गुरुदासपुर से अमृतसर होते हुए स्वामीजी जालन्धर पधारे। जालन्धर में सरदार सुचेतसिंह की कोठी पर निवास किया। यहाँ महाराज के ३५ व्याख्यान हुए। एक दिन सरदार विक्रमसिंह ने स्वामीजी महाराज से कहा कि आप ब्रह्मचर्य की महिमा का बहुत वर्णन करते हैं। हम कैसे समझें कि ब्रह्मचारी में अतुल्य बल होता है? उस समय महाराज शान्त रहे। एक दिन सरदार विक्रमसिंह दो घोड़ों की गाड़ी पर सवार हुए। महाराज ने चुपके से गाड़ी के पिछले पहिये को पकड़ लिया। कोचवान ने गाड़ी को चलाना चाहा, पर गाड़ी न चल सकी। घोड़ों को चाबुक लगाया पर घोड़े एक पग भी आगे न बढ़ सके। सरदार विक्रमसिंह ने पीछे की ओर देखा तो स्वामीजी महाराज गाड़ी का पहिया पकड़े हुए खड़े थे और मुस्करा रहे थे। सरदार विक्रमसिंह ने ब्रह्मचर्य के बल का प्रत्यक्ष प्रमाण पाया। स्वामीजी महाराज के प्रति श्रद्धान्वित होकर उनके चरण स्पर्श किए।

जालन्धर से लाहौर होते हुए छब्बीस अक्टूबर के दिन दयानन्द सरस्वती

फिरोज़पुर पधारे। यहाँ स्वामीजी महाराज के आठ व्याख्यान हुए। व्याख्यानों के साथ शङ्कासमाधान भी होते रहे। अपने एक भक्त स्वरूपसिंह को महाराज ने कुछ योग के रहस्य भी बतलाए। उनके जाने के बाद भक्तजनों ने पाँच नवम्बर सन् १८७७ के दिन फिरोज़पुर में आर्यसमाज की स्थापना की।

पाँच नवम्बर को महाराज पुनः लाहौर पधारे। छः नवम्बर के दिन लाहौर आर्यसमाज की अन्तरङ्ग सभा में उपनियम स्वीकृत होने थे। सदस्यों ने महाराज से अन्तरङ्ग सभा में पधार कर उपनियमों के विषय में अपनी सम्मति प्रकट करने की प्रार्थना की, पर महाराज ने अन्तरङ्ग सभा का सदस्य न होने के कारण सम्मिलित होना स्वीकार न किया। इस पर उन्हें नियमानुसार सदस्य बनाकर अन्तरङ्ग सभा में उपस्थित होने के लिए विनती की। स्वामीजी महाराज के परामर्श के अनुसार उपनियम बनाए गए।

सात नवम्बर के दिन दयानन्द सरस्वती रावलपिण्डी पधारे। यहाँ मूर्तिपूजा के खण्डन के साथ ईसाई मुसलमानों के मत की बुराइयों का भी प्रदर्शन करते हुए वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा पर अनेक व्याख्यान दिये। आर्यसमाज की स्थापना की। भक्त किशनचन्द आर्यसमाज के मन्त्री और ला० गोपीचंद सहकारी मन्त्री नियुक्त हुए।

तीन नवम्बर के दिन स्वामीजी महाराज रावलपिण्डी से जेहलम पधारे। यहाँ वैदिक धर्म का प्रचार और आर्यसमाज की स्थापना के पश्चात् तेरह जनवरी के दिन गुजरात पधारे।

गुजरात में शिक्षित हिन्दू वर्ग पर ईसाई धर्म का प्रभाव था। स्वामीजी महाराज ने ईसाई धर्म की बुराइयों और मिथ्या सिद्धान्तों का खण्डन किया। पादरियों से शास्त्रार्थ भी किया। हिन्दू धर्म की कुरीतियों पर भी प्रकाश डालते हुए वेद के महत्व, ब्रह्मचर्य तथा सन्ध्या पर प्रभावशाली व्याख्यान दिये। महाराज के व्याख्यानों से प्रभावित होकर एक मौलवी ने गायत्री मन्त्र के जप का संकल्प किया।

यहाँ महाराज के व्याख्यानों में ईंट पत्थर की वर्षा भी हुई पर उन्होंने पुष्पवर्षा के समान अनुभव किया। मन में किसी प्रकार की उत्तेजना न थी, स्थिरचित्त होकर प्रचार करते रहे। यहाँ से वज़ीरावाद होते हुए गुजरांवाला पधारे। यहाँ भी ईसाई पादरी सोलफीट के साथ स्वामीजी महाराज का शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ का विषय था

"जीव और ईश्वर में भेद और उनके परस्पर सम्बन्ध क्या हैं?" महाराज ने बहुत सरल तथा तर्क के द्वारा वैदिक मत का प्रतिपादन किया। फाल्गुन कृष्ण ३ सं० १९३४ (३ मार्च सन् १८७८) के दिन यहाँ भी आर्यसमाज की स्थापना हो गई।

गुजरांवाला से लाहौर होते हुए स्वामीजी महाराज मुलतान पधारे। मुलतान में इन दिनों गोकुलिये गोसाइयों का बहुत प्रचार था महाराज ने उनकी लीलाओं का खण्डन किया। छत्तीस दिन मुलतान में रहे। पैंतीस व्याख्यान दिये। व्याख्यानों में वैदिक सिद्धान्तों के महत्व और हिन्दू धर्म में पाई जाने वाली कुरीतियों पर प्रकाश डाला। ईसाई मुसलमानों के साथ धार्मिक विषयों पर वार्तालाप करते रहे। चार अप्रैल के दिन मुलतान में आर्यसमाज की स्थापना की।

सोलह अप्रैल के दिन स्वामीजी महाराज पुनः लाहौर पधारे। चौदह मई तक लाहौर में अपनी अमृत वर्षा से भक्तजनों को तृप्त करते रहे। यहाँ से अमृतसर में पदार्पण किया। अमृतसर में पुराणपन्थी पण्डितों और ईसाइयों ने महाराज के साथ शास्त्रार्थ के लिए कोलाहल तो बहुत किया, पर तैयार न हो सके। ईसाइयों ने अपने प्रचारक खंगसिंह को इसके लिए बुलवाया पर वह महाराज के दर्शन पाकर श्रद्धा से उनके चरणों में गिर पड़ा और वैदिक धर्म में शरण ले ली। खंगसिंह बारह वर्ष से ईसाई धर्म में रहकर उसका प्रचार कर रहा था। अन्य चालीस नवशिक्षित हिन्दू युवक जो ईसाई धर्म में प्रविष्ट होना चाहते थे, वे भी महाराज के भक्त बन गए।

पंजाब में दयानन्द सरस्वती की यह स्वल्पकाल की प्रचार यात्रा बहुत सफल रही। यहाँ इन दिनों ईसाई पादरियों ने अपने धर्म के प्रचार का जाल बिछा रखा था। ईसाइयों की ओर से नगरों और कस्बों में स्कूल खोले जा रहे थे। अंग्रेजी शिक्षा का क्षेत्र इन्हीं के हाथ में था। शिक्षित नवयुवकों को नौकरी का लालच दिया जाता था। हिन्दू धर्म में ऊँच-नीच का भेदभाव बहुत अधिक था। नीच समझे जाने वाले वर्ग के लिए हिन्दू धर्म का परित्याग कर ईसाई मत में आने के अतिरिक्त और कोई उन्नति का मार्ग न था। वे सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए ईसाई धर्म में प्रवेश कर रहे थे। हिन्दू धर्म में पाखण्ड लीला का प्रसार था सामाजिक कुरीतियों और संकुचित दृष्टिकोण के कारण समझदार हिन्दू युवक इस धर्म से विमुख हो रहे थे।

दयानन्द सरस्वती का ऊँचा कद, सुसंगठित मांसपेशियाँ, तेजोमय

मुखमण्डल और गेरूए वस्त्रों की आभा देखते ही जनसाधारण श्रद्धा से नतमस्तक हो जाता था। जन-कल्याण की कामना थी। वैदिक धर्म के पुनरुत्थान की भावना थी। भारत के प्राचीन गौरव को जागृत करने की लालसा थी। वेद और प्राचीन शास्त्रों के वे प्रकाण्ड पण्डित थे। अनुपम सूझ थी, प्रतिभाशाली तार्किक थे। पंजाब में लोग अपेक्षाकृत अविद्या से कम ग्रस्त थे। पंजाब की जनता ने वैदिक धर्म के सत्यस्वरूप को दयानन्द सरस्वती की ओजस्विनी वाणी द्वारा सुना। उसे हृदयंगम किया। ईसाईकरण मन्द पड़ गया। हिन्दू धर्म की पाखण्ड लीला और कुरीतियों से बचने के लिये जनसमुदाय दयानन्द सरस्वती की शरण में आया। उत्साह भरे हृदय से दयानन्द सरस्वती का स्वागत किया। प्रत्येक नगर में आर्यसमाज की स्थापना होने लगी। वेदों का डंका बजने लगा। सारे भारत में पंजाब व हरियाणा में ऋषि दयानन्द का प्रचार सबसे अधिक प्रभावशाली हो गया। और उनके विचार साधारण जन तक पहुँचने लगे।

उत्तर प्रदेश व बिहार में प्रचार कार्य

अमृतसर से लुधियाना तथा अम्बाला होते हुए दयानन्द सरस्वती श्रावण वदी १५ सं० १९३५(ई० सन 1878) के दिन रुड़की पधारे। रुड़की में दिल्ली निवासी ला० शम्भुनाथजी की कोठी पर निवास किया। स्वामीजी की प्रसिद्धि चारों ओर फैल चुकी थी। उनका प्रथम व्याख्यान अपने निवास स्थान पर "ईश्वरोक्त ज्ञान" पर हुआ। अगले दिन से आरमन स्कूल के समीप के मैदान में व्याख्यानों का प्रबन्ध किया गया। व्याख्यानों के विषय थे—सत्यधर्म और वेद, मूर्ति पूजा, आवागमन, इंजील और कुरान की शिक्षा, पाश्चात्य दर्शन, डार्विन के सिद्धान्त, पुराणों में बुद्धिविरुद्ध गाथाएँ अर्थात् स्वामीजी एक-एक विषय को लोगों को पूर्ण रूप से समझाते थे।

वैदिक धर्म के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते हुए दयानन्द सरस्वती ने निर्भयतापूर्वक कुरान और इंजील के उद्धरण देते हुए उनके दार्शनिक सिद्धान्तों को तर्क विरुद्ध सिद्ध किया। दोनों धर्मों के चित्र खींचकर श्रोताओं के समक्ष रखते हुए वैदिक धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया। प्रचलित हिन्दू धर्म की कुप्रथाओं और कपोलकल्पित गाथाओं की कड़ी आलोचना की। इन व्याख्यानों में साधारण जनता के साथ इंजिनियरिंग कालेज के छात्र, प्रोफेसर तथा अन्य शिक्षितजन भी उत्साह के साथ बड़ी संख्या में आते थे। वे सभी दयानन्द सरस्वती की सरल तथा मनोरंजक

विषय-निरूपण शैली और विवेकपूर्ण तर्क से प्रभावित थे।

इंजिनियरिंग कालेज के छात्र तथा प्रोफेसर स्वामीजी महाराज के साथ वैज्ञानिक विषयों पर भी वार्तालाप करते रहे। दयानन्द सरस्वती ने उन्हें वेद मन्त्रों के उदाहरण देकर बतलाया कि वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार वेदों में सूत्र रूप से विद्यमान हैं।

एक मास तक रुड़की में वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए यहाँ आर्यसमाज की स्थापना की।

रुड़की से प्रस्थान कर दयानन्द सरस्वती अलीगढ़ होते हुए भाद्रपद वदी १३ सं० १९३५ (२६ अगस्त सन् १८७८) के दिन मेरठ पधारे। यहाँ बाबू दामोदरदास की कोठी पर निवास किया। एक सितम्बर से स्वामीजी महाराज के व्याख्यानों और शङ्कासमाधान का सिलसिला शुरू हो गया। धर्माधर्म का स्वरूप, ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना, मृतक श्राद्ध का खण्डन आदि विषयों पर प्रभावशाली व्याख्यान हुए। २९ सितम्बर सन् १८७८ के दिन यहाँ आर्यसमाज की स्थापना हो गई। प्रारम्भ में ८१ सदस्य बने। ला० रामशरणदास प्रधान चुने गए।

आश्विन सुदी १२ सं १९३५ (९अक्टूबर सन् १८७८) के दिन स्वामीजी महाराज मेरठ से दिल्ली पधारे, यहाँ सब्जीमण्डी में ला० बालमुकुन्द केशरीचन्द के उद्यान में निवास किया। १३ अक्टूबर से मोहल्ला शाहजी के छत्ते में महाराज के व्याख्यान होने लगे। उपदेशों के अनुपम प्रभाव से नवम्बर के अन्तिम सप्ताह में दिल्ली में आर्यसमाज की स्थापना हो गई।

दिल्ली से अजमेर, मसूदा, नसीराबाद छावनी, जयपुर, रिवाड़ी में वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए दयानन्द सरस्वती पुनः दिल्ली पधारे। दिल्ली में दो-तीन व्याख्यान देकर सं० १९३६ के हरिद्वार में कुम्भ के मेले के अवसर पर प्रचार के निमित्त चल दिये। मार्ग में मेरठ, सहारनपुर, रुड़की में भक्तजनों के साथ धर्मालाप करते हुए सं० १९३५ (२० फरवरी सन् १८७९) के दिन ज्वालापुर पहुँचे। यहाँ मूला मिस्त्री के उद्यान में कुछ दिन निवास किया।

मेले में सर्वत्र दयानन्द सरस्वती के आगमन का समाचार फैल गया। नित्य धर्मोपदेश, परस्पर वार्तालाप और शङ्का समाधान होते रहे। प्रातः सात बजे से ग्यारह

बजे तक, एक बजे से पाँच बजे तक, पुनः सांय सात बजे से रात्रि नौ बजे तक स्वामीजी महाराज का प्रचार कार्य चलता रहता था। नौ बजे के पश्चात् कुछ घण्टे ही महाराज शयन करते थे। शेष समय ध्यान समाधि और भगवद् भजन में रत रहते थे। निरन्तर कठिन परिश्रम के कारण स्वामीजी महाराज रोगग्रस्त भी हो गए।

हरिद्वार में कुम्भ के मेले के अवसर पर प्रचार कार्य समाप्त कर दयानन्द सरस्वती वैशाख वदी ८ सं० १९३६(ई० सन् 1879) के दिन देहरादून पधारे। रोगग्रस्त होने के कारण कुछ दिन विश्राम कर उपेदश देना आरम्भ कर दिया। वैशाख सुदी ९ सं० १९३६ के दिन भक्तजनों ने यहाँ आर्यसमाज की स्थापना कर दी। देहरादून निवासकाल में स्वामीजी महाराज ने एक जन्म के मुसलमान मुहम्मद उमर को वैदिक धर्म की दीक्षा देकर उसका नाम अलखधारी रखा।

देहरादून से वैशाख सुदी १० सं १९३६ के दिन दयानन्द सरस्वती सहारनपुर पधारे। सहारनपुर में अमरीका से थियासोफिल सोसाइटी प्रवर्त्तक कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्सकी महाराज से मिलने आए हुए थे। दोनों विशिष्ट अतिथियों के साथ स्वामीजी महाराज ने वैशाख सुदी १२ के दिन मेरठ में पर्दापण किया। मेरठ में दयानन्द सरस्वती को दो पश्चिम देश निवासी शिष्यों के साथ देखकर भक्तजन प्रसन्न थे। स्वामीजी महाराज तथा दोनों विशिष्ट अतिथियों का पृथक् निवास का प्रबन्ध किया गया। महाराज के व्याख्यानों का सिलसिला जारी हो गया। कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्सकी के भी व्याख्यान होने लगे। इन दोनों ने भी ईसाई मत की तर्कविरुद्ध बातों पर प्रकाश डालते हुए वेदों के महत्त्व का निरूपण किया।

कुछ दिन तक स्वामीजी महाराज के सत्संग का लाभ उठा कर दोनों अतिथि महोदय बम्बई चले गए।

मेरठ से दयानन्द सरस्वती अलीगढ़ और जलेसर होते हुए मुरादाबाद पधारे। यहाँ आपने भक्त जयकिशनदास के बंगले पर निवास किया। मेरठ से प्रस्थान के बाद दयानन्द सरस्वती कुछ रोगग्रस्त हो गए थे, अतः निर्बलता के कारण यहाँ तीन व्याख्यान ही दे सके। एक व्याख्यान मुरादाबाद के कलक्टर स्पेडिङ्ग महोदय की प्रार्थना पर छावनी में हुआ। इसमें कुछ अंग्रेज पदाधिकारी भी उपस्थित थे। स्वामीजी महाराज ने राजधर्म के ऊँचे सिद्धान्तों का निरूपण करते हुए शासकों के कर्त्तव्यों पर

प्रकाश डाला। शासन में पक्षपात आदि दोषों को दूर करने का अनुरोध किया।

स्पेडिङ्ग महोदय इस व्याख्यान से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने स्वामीजी महाराज का धन्यवाद करते हुए कहा कि यदि इस नीति के अनुसार शासकों के जनता के साथ सम्बन्ध हो जाएं तो कभी विद्रोह न होने पाएं। प्रजा सुखी रहे।

श्रावण सुदी १ सं० १९३६ (२० जुलाई सन् १८७९) के दिन राजा जयकिशनदास के बङ्गले पर विधिवत् यज्ञ करके आर्यसमाज की स्थापना की गई। स्वामीजी महाराज ने सब सदस्यों को परस्पर मिलते समय सम्मान और स्नेह प्रकट करने के लिए "नमस्ते" शब्द के प्रयोग का आदेश दिया।

कायमगंज निवासी श्री रामलालजी स्वामीजी महाराज से यज्ञोपवीत ग्रहण करना चाहते थे। महाराज ने उन्हें विधिवत् यज्ञोपवीत धारण करा गायत्री मन्त्र का सस्वर उच्चारण कर उसका अर्थ समझाया।

एक दिन रामलालजी ने महाराज से विनम्रभाव से बातचीत के सिलसिले में निवेदन किया कि आप ऐसे सुयोग्य शिष्यों का प्रशिक्षण क्यों नहीं करते जो आपके इस महान् कार्य का संचालन करे। त्यागभाव के साथ आपके आदर्श का पालन करते हुए वैदिक धर्म की ध्वजा को सर्वत्र फहराएं ?

महाराज ने कहा–प्रिय रामलाल! मैंने इसके लिए बहुत प्रयत्न किया। वाराणसी आदि स्थानों में पाठशालाएं खोलीं। विद्वान् पण्डितों को वहाँ विद्यादान के लिए बिठाया, पर पण्डितगण स्वार्थवश तथा परम्परागत अज्ञानवश पुराणपन्थी ही बने रहे। वे वैदिक आदर्श के प्रतिकूल ही शिष्यों को शिक्षा देते रहे! अब मुझे निश्चय हो गया है कि इस जन्म में तो मुझे सुपात्र शिष्य नहीं मिल सकता। मैंने अपने यौवनकाल में वैराग्य भावना से माता–पिता का परित्याग किया। उनकी सेवा सुश्रूषा नहीं की। पितृ ऋण से मुक्ति नहीं हो सका। मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से योगाभ्यास की ओर प्रवृत्त रहा। इन कर्मों के कारण मैं विश्वासी सुपात्र शिष्य नहीं प्राप्त कर सका। मुझे आशा है कि भविष्य में आर्यसमाज में ऐसे उत्साही, त्यागी विद्वान् पुरुष अवश्य प्रकट होंगे जो वैदिक आदर्श का विश्व में विस्तार करेंगे। यहाँ ऋषि दयानन्द की पीड़ा बोल रही है कि स्वार्थ के कारण विद्वान् भी सत्य को जानते हुए भी नहीं स्वीकारते और आर्यसमाज से एक आशा भी ऋषि यहाँ पर प्रदर्शित करते हैं। आर्यसमाज का

कर्त्तव्य तो यही होना चाहिये। हमें इस पर विचार करने की अवश्यकता है।

मुरादाबाद में दयानन्द सरस्वती द्वारा श्रावण सुदी १३ सं० १९३६ (ई० सन् 1879) में ही आर्यसमाज स्थापित हो चुकी थी। यहाँ भक्तजनों को अपने उपदेशामृत से तृप्त भाद्रपद वदी १२ के दिन बरेली में पदार्पण किया।

चांदपुर के "मेला ब्रह्म विचार" के अवसर पर बरेली के ईसाई पादरी स्काट महोदय का दयानन्द सरस्वती के साथ संवाद हुआ था। उसी समय से स्काट महोदय स्वामीजी के श्रद्धालु भक्त हो गए थे। बरेली में स्काट महोदय का स्वामीजी के साथ पुनः कुछ विषयों में प्रेमपूर्ण संवाद हुआ।

एक दिन स्वामीजी के व्याख्यान की समाप्ति पर भक्तजनों ने प्रार्थना की कि महाराज! कल रविवार है। यदि आप अपने व्याख्यान का समय एक घण्टा पहले करदें तो अनुग्रह होगा। व्याख्यान का स्थान निवास-स्थान से दूर था। ला० लक्ष्मी नारायण ने कहा कि मैं अपनी गाड़ी आपके पास समय से एक घण्टा पूर्व भेज दूंगा। गाड़ी समय पर न पहुँची। श्रोतागण व्याख्यान-स्थली पर स्वामीजी महाराज की प्रतीक्षा कर रहे थे। स्वामीजी समय का व्यतिक्रम नहीं किया करते थे। बहुत समय तक प्रतीक्षा करने के बाद वे पैदल चल पड़े। मार्ग में गाड़ी मिली। व्याख्यान प्रारम्भ करते समय स्वामीजी ने कहा—उपस्थित सज्जनों ! इस विलम्ब में मेरा दोष नहीं। बहुत समय तक प्रतीक्षा करने के बाद मैं पैदल चल पड़ा। मार्ग में गाड़ी मिली। पौन घण्टा विलम्ब हो गया। यह दोष बच्चों के बच्चों का है। बाल-विवाह की सन्तानों में ऐसी निर्बलताएं स्वाभाविक हैं। बाल विवाह को ऋषि सबसे अधिक घातक मानते थे।

स्वामीजी के एक व्याख्यान में पादरी स्काट के साथ बरेली के कमिश्नर मि० ऐडवर्ड, कलक्टर मि० रेड तथा अन्य पन्द्रह बीस अंग्रेज सज्जन उपस्थित थे। स्वामीजी पुराणों की असम्भव कथाओं का खण्डन कर रहे थे। पुराणों में वर्णित पंचकुमारियों की चर्चा करते हुए महाराज ने पौराणिकों की बुद्धि पर खेद प्रकट किया और कहा कि ये लोग द्रौपदी के पाँच पति मानते हुए भी उसे कुमारी कहते हैं। इन के विश्वास के अनुसार कुन्ती, तारा, मन्दोदरी भी कुमारी थी। इस प्रकार की कथाएं पौराणिक आचारवाद को कितना हीन बना देती हैं ?

अंग्रेज श्रोतागण इन आलोचनाओं को सुनकर विनोदपूर्ण परिहास कर रहे थे।

पौराणिक लीला का वर्णन कर स्वामीजी ने कहा–'यह तो पुराणियों की लीला है, अब किरानियों (ईसाईयों) की लीला सुनो। ये लोग कुमारी के गर्भ से पुत्र की उत्पत्ति मानते हैं और दोष सर्वज्ञ, शुद्ध स्वरूप परमात्मा पर लगाते हैं। ऐसा घोर पाप करते हुए तनिक भी लज्जित नहीं होते।

अपने मत की यह आलोचना सुनकर कमिश्नर और कलैक्टर महोदय का विनोदपूर्ण मुखमण्डल क्रोधावेश में परिणत हो गया। महाराज उसी प्रकार शान्त और गम्भीर भावना के साथ ईसाई मत की आलोचना करते रहे।

दूसरे दिन कमिश्नर महोदय ने ला० लक्ष्मीनारायण को बुलवाकर कहा कि पण्डित दयानन्द से कह दो कि वे इतने कठोर शब्दों में आलोचना न किया करें। हम ईसाई पुरुष तो सभ्य और सहनशील हैं परन्तु अशिक्षित हिन्दू और मुसलमानों में उत्तेजना फैल गई तो पण्डित दयानन्द के व्याख्यान बन्द हो जायेंगे।

ला० लक्ष्मीनारायण दुविधा में पड़ गए। दयानन्द सरस्वती को कमिश्नर का सन्देश देने का उनमें साहस न था। कमिश्नर महोदय की आज्ञा का पालन भी उनके लिए आवश्यक था। अपने मित्रों से उन्होंने प्रार्थना की कि वे कमिश्नर महोदय का सन्देश स्वामीजी तक पहुँचा दें, पर कोई इस प्रकार का साहसी पुरुष न था जो इस निर्भय सिंह के सामने कुछ बोल सके। अन्त में ला० लक्ष्मीनारायण एक साथी के साथ दयानन्द सरस्वती के निवास स्थान पहुँचे। कुछ समय सिर खुजलाते रहे। बोलने की चेष्टा करने लगे पर वाणी में स्पन्दन न हुआ। बहुत कठिनाई से लड़खड़ाती वाणी में कहा–महाराज ! यदि बोलने में सख्ती न की जाये तो क्या हर्ज है ? इससे असर अच्छा पड़ता है। अंग्रेजों को नाराज करना भी अच्छा नहीं।

स्वामीजी महाराज मुस्कराकर बोले–तुम्हें साहब ने कहा होगा कि तुम्हारा पण्डित कठोर शब्दों में आलोचना करता है। उसके व्याख्यान बन्द हो जायेंगे। यह होगा, वह होगा। अरे भाई मैं कोई हव्वा तो नहीं हूँ जो तुम्हें खा जाऊंगा। उसने तुमसे कहा, तू मुझ से कह देता। व्यर्थ समय क्यों गंवाया? यह थी ऋषि की सहनशीलता।

उसी दिन स्वामीजी का "आत्मा के स्वरूप" पर व्याख्यान हुआ। पादरी स्काट के अतिरिक्त अन्य सब अंग्रेज व्याख्यान में उपस्थित थे। स्वमीजी महाराज सत्य के महत्व पर प्रकाश डालते हुए सिंह गर्जना के साथ बोले–लोग कहते हैं सत्य

को प्रकट न करो। कमिश्नर अप्रसन्न होगा। कलैक्टर पीड़ा देगा। अरे चक्रवर्ती राजा भी क्यों न अप्रसन्न हो हम तो सत्य ही कहेंगे। यह शरीर तो अनित्य है। इसकी रक्षा में प्रवृत्त होकर अधर्म करना व्यर्थ है। इसे जिसका जी चाहे नष्ट कर दे। आत्मा नित्य है। फिर गर्जना की कि **है कोई शूरवीर जो यह कहता हो कि वह मेरे आत्मा का नाश कर सकता है? जब तक ऐसा वीर पुरुष संसार में नहीं दिखाई देता तब तक मैं सोचने के लिए भी तैयार नहीं हूँ कि मैं सत्य को दबाऊं या नहीं।** वास्तव में सत्य के प्रति ऐसा समर्पण विरले ही दिखाया करते हैं।

स्वामीजी की इस निर्भय घोषणा को सुनकर श्रोताजनों में सन्नाटा छा गया।

इन दिनों स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द (महात्मा मुंशीराम) भी बरेली में थे। उनके पिता यहाँ शहर कोतवाल थे। नवयुवक मुंशीराम बनारस में एक कॉलेज में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। पाश्चात्य शिक्षा में दीक्षा पा रहे इस नवयुवक में नास्तिकता आ गई थी। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में उसकी अश्रद्धा थी। कालेज में अवकाश के कारण बरेली में पिता के पास आए थे। पिता ने बालक को सन्मार्ग पर लाने के लिये स्वामी जी के व्याख्यान सुनने भेजा। वह प्रतिदिन नियमानुसार व्याख्यान सुनने आने लगा। दयानन्द सरस्वती के "ईश्वर के स्वरूप" के विषय में व्याख्यान को सुनकर उसकी नास्तिकता की जड़ें हिल गई। स्वामीजी महाराज के चरणों में आकर मुंशीराम ने ईश्वर की सत्ता के विषय में अपने संशयों को प्रस्तुत किया। सर्वथा निरुत्तर होने पर मुंशीराम ने निवेदन किया–महाराज ! आपकी विवेक पूर्ण तर्क शक्ति अद्‌भुत है। उसके सामने कोई टिक नहीं सकता, परन्तु मेरा मन ईश्वर पर विश्वास के लिए तैयार नहीं। यह अविश्वासी मन किस प्रकार उस पर विश्वास करेगा ?

स्वामीजी महाराज ने कहा–मुंशीराम ! मैं तो तुम्हारी युक्तियों का उत्तर देकर संशय निवारण कर सकता हूँ। जिस सच्चाई को तुम तर्क द्वारा समझ लो उस पर विश्वास करके चलो। परमपिता परमात्मा की कृपा से ही वह दृढ़ बन पायेगा।

यही नवयुवक मुंशीराम के साथ हुआ। वह अविश्वासी युवक मुंशीराम महात्मा बना। महात्मा श्रद्धानन्द बना व ऋषि के पथ को आगे बढ़ाया।

दयानन्द सरस्वती रात्रि को दो तीन बजे के बीच में उठकर अपने निवास स्थान से परे कुछ घण्टों के लिए चले जाया करते थे। एक दिन युवक मुंशीराम के मन

में आया कि देखूं, यह साधु रात्रि में इस समय कहाँ जाता है और क्या करता है ? वह रात्रि के ढाई बजे स्वामीजी के निवास स्थान पर पहुँच गया। दयानन्द सरस्वती उस समय एकमात्र कौपीन धारण कर भ्रमणार्थ चल पड़े। युवक मुंशीराम भी पीछे–पीछे चल दिया। स्वामी जी की गति इतनी तीव्र थी कि वह उसके पीछे न चल सका। दूसरे दिन पुनः रात्रि के बारह बजे मार्ग के मध्य भाग में आकर खड़ा हुआ। साधु का पीछा किया। स्वामी जी के आसन जमा कर समाधिस्थ हो जाने पर वह वापिस घर आ गया।

बरेली में अमृत वर्षा करने के उपरान्त दयानन्द सरस्वती शाहजहाँपुर, लखनऊ, फर्रूखाबाद, कानपुर, प्रयाग, मिर्जापुर होते हुए दानापुर पधारे। यहाँ आर्यसमाज की स्थापना पहले से ही हो चुकी थी। दानापुर में वैदिक धर्म के प्रचार के साथ इस्लाम और ईसाई धर्म की तीव्र आलोचना करते रहे। ईसाई धर्म की आलोचना के समय जनरल रौबर्ट्स (जङ्गी लाट) भी व्याख्यान में उपस्थित थे। वे स्वामीजी की निर्भयता को देख अत्यन्त प्रसन्न हुये।

दानापुर से स्वामीजी ने कार्तिक सुदी चतुर्दशी सं० १९३६(ई सन् 1879) के दिन काशी में पदार्पण किया। मार्गशीर्ष सुदी दो के दिन कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्सकी भी स्वामीजी से मिलने के लिए काशी आए। यहाँ महाराज के साथ ज्ञान चर्चा तथा योगविषयक वार्ता करते रहे। महाराज का जीवन चरित्र भी उनके मुखारविन्द से सुनकर लिखते रहे। इन्हीं दिनों दयानन्द सरस्वती ने काशी में वैदिक यन्त्रालय की स्थापना की।

काशी से दयानन्द सरस्वती फर्रूखाबाद होते हुए मैनपुरी पहुँचे। मैनपुरी में उनके प्रचार के प्रभाव से उनके जाने के बाद आर्यसमाज की स्थापना हो गई।

मैनपुरी से दयानन्द सरस्वती आषाढ़ सुदी एक सं० १९३७ (ई० सन् 1880) के दिन मेरठ पधारे। मेरठ छावनी में ला० रामशरणदास की कोठी में निवास किया। यहाँ आर्यसमाज की ओर से एक कन्या पाठशाला का भी संचालन हो रहा था। पाठशाला में एक योग्य संस्कृत अध्यापिका की आवश्यकता थी। महाराज को पता लगा कि कलकत्ता में एक महाराष्ट्रीय महिला रमाबाई संस्कृत की विदुषी रहती है। उन्होंने उसे इस कार्य के लिए मेरठ बुलवाया। स्वामीजी की विद्वत्ता से प्रभावित होकर वह उनसे वैशेषिक दर्शन पढ़ने लगी। पं० भीमसेन, पं० ज्वालादत्त, बाबू ज्योतिप्रसाद

भी रमाबाई के साथ महाराज से वैशेषिक दर्शन पढ़ते रहे। स्वामीजी महाराज चाहते थे। कि यह विदुषी महिला ब्रह्मचारिणी रहकर कन्याविद्यालय में कन्याओं को संस्कृत पढ़ाये तथा वैदिक धर्म का प्रचार करे। वह इसके लिए सहमत न हुई। रमाबाई एक बंगाली कायस्थ युवक से विवाह करना चाहती थी। स्वामीजी ने आर्य सदस्यों को आज्ञा देकर उसे सम्मानपूर्वक कलकत्ता जाने के लिए विदाई दिलवाई। लेकिन बाद में रमाबाई ने ईसाई धर्म की दीक्षा ले ली।

कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्सकी इन दिनों शिमला जा रहे थे। दयानन्द सरस्वती से मिलने के लिए मेरठ ठहर गए। बाबू छेदीलाल की कोठी पर इनके ठहरने का प्रबन्ध किया गया। भारत आने से पूर्व कर्नल और मैडम दोनों ने दयानन्द सरस्वती को जो पत्र लिखे थे, उनमें उन्होंने वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानना स्वीकार किया था। ईश्वर में पूर्ण विश्वास प्रकट किया था। दयानन्द सरस्वती को अपना आध्यात्मिक गुरु मानकर उनसे पथ–प्रदर्शन की मांग की थी। इसी आधार पर अमरीका तथा अन्य देशों में थियोसोफिकल सोसाइटी का नाम थियासोफिकल सोसाइटी ऑफ आर्यसमाज रखकर इसे आर्यसमाज की शाखा के तौर पर घोषित किया था।

भारत में आने पर कुछ समय बाद इनके विचारों में परिवर्तन हो गया। इनमें मान और प्रतिष्ठा का जोरदार उभार हुआ। आर्यसमाज का वह संघर्ष का युग था। हिन्दू जाति में नाना प्रकार के सम्प्रदायों का जाल बिछा हुआ था। सभी सम्प्रदायों में गुरु प्रथा का प्रचार था। वैदिक आदर्श को जानते नहीं थे। मनुष्य जाति में जन्म से जातिभेद की मान्यता के कारण निम्न वर्ग के हिन्दू, ईसाई व मुसलमान हो रहे थे। हिन्दू जाति के माननीय पण्डितों और पुजारियों को इस वर्ग के लोगों का विधर्मियों में प्रवेश आपत्तिजनक नहीं प्रतीत होता था। ये अपनी हानि को समझ ही नहीं पा रहे थे। स्वार्थ में अन्धे जो हो चुके थे। अपने धर्म में सुधार करने के लिए वे किसी प्रकार सहमत न थे। नाना प्रकार की पूजा पद्धतियों के कारण इनमें अन्दर और बाहर फूट तथा वैमनस्य की भावना बढ़ रही थी। शैव और वैष्णव तो एक दूसरे के कट्टर विरोधी बने हुए थे। निम्न वर्ग के साथ उच्च वर्ग के अंग्रेजी शिक्षा तथा पश्चिमीय विचारों से दीक्षित हिन्दू भी अपने धर्म में कुरीतियों को देखकर ईसाई धर्म में प्रवेश कर रहे थे।

ऐसी अवस्था में दयानन्द सरस्वती का जीवन संघर्षमय था। उन्हें हिन्दू धर्म

में फैली हुई मिथ्या भावनाओं को नष्ट कर वैदिक धर्म के विशुद्ध स्वरूप को स्थापित करना था। ईसाई और मुसलमानों के धर्मों में पाई जाने वाली बुराइयों और तर्क विरुद्ध असत्य सिद्धान्तों को प्रकाश में लाकर वैदिक धर्म के महत्व को विश्व में प्रकाशित करना था। आर्यवंशियों को मुसलमान व ईसाई होने से बचाना था।

कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्सकी का दयानन्द सरस्वती की शिष्यता स्वीकार करके आर्यसमाज में प्रवेश का एकमात्र उद्देश्य आत्मप्रतिष्ठा को बढ़ावा देना था। अमरीका में उन्हें इसमें सफलता नहीं मिली थी। आर्यसमाज के बाहर भारतीयों में गुरु प्रथा के कारण सभी सम्प्रदायों में अन्धविश्वास था। सभी सम्प्रदायों के आचार्यों ने अपने-अपने धर्म संस्थापकों के चमत्कारों की कहानियाँ कल्पित कर रखी थी। कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्सकी ने भारतीयों की इस अन्ध श्रद्धा से लाभ उठाना शुरू किया। कर्नल और मैडम ने भारतवासियों को मृतात्मओं के आह्वान और उनके साथ वार्तालाप के रूप में चमत्कार दिखाने शुरू किये। ईश्वर पर उनका विश्वास नहीं था। इसलिये स्वामी जी थियोसोफिकल सोसाईटी को अलग रखना चाहते थे।

दयानन्द सरस्वती सत्य के पुजारी थे। वे जिस सिद्धान्त को सत्य समझते थे उसमें अडिग रहते थे। गुरु प्रथा (गुरुडमवाद) के कट्टर विरोधी थे। ईश्वर में उनकी परम आस्था थी। मैडम और कर्नल के चमत्कार प्रदर्शन को असत्य पर आधारित समझते थे। वे कहते थे की **यदि सिद्धान्त एक हैं तो फिर अलग अस्तित्व कैसा?**

इस प्रकार परस्पर विचारभेद के कारण आर्यसमाज और थियोसोफिकल सोसाइटी में सदा के लिए सम्बन्ध विच्छेद हो गया क्योंकि स्वामी जी सिद्धान्तहीनता को स्वीकार नहीं कर सकते थे।

मेरठ से दयानन्द सरस्वती कुछ दिनों के लिए मुजफ्फरनगर धर्मप्रचार के निमित्त गए। मुजफ्फरनगर से पुनः आर्यसमाज के वार्षिक समारोह में भाग लेने के लिए मेरठ पधारे। इस उत्सव में स्वामीजी ने स्पष्ट शब्दों में आर्यसमाज और थियोसोफिकल सोसाइटी के मतभेदों को प्रकट करते हुए आर्य पुरुषों को सावधान कर दिया कि वे किसी प्रकार धोखे में आकर थियोसोफिकल सोसाइटी को आर्यसमाज की शाखा समझ कर के उसके सदस्य न बनें।

मेरठ से दयानन्द सरस्वती देहरादून पधारे। देहरादून से पुनः मेरठ होते हुए

आगरा में पदार्पण किया। यहां कुछ दिन धर्म प्रचार के अनन्तर स्वामीजी के भक्तों ने पौष वदी नौ सं० १९३७(ई० सन 1880) के दिन आर्यसमाज की स्थापना की। यहाँ रहते हुए स्वामीजी ने "गोकरुणानिधि" पुस्तक की रचना की और गोरक्षा के प्रचार के निमित्त गोकृष्यादि रक्षिणी सभा की स्थापना की। मुंशी गिरधारीलाल वकील इस सभा के मन्त्री निर्वाचित हुए।

सन् १८८१ में भारत में जनगणना होनी थी। मुलतान आर्यसमाज के मन्त्री दयाराम के एक पत्र के उत्तर में दयानन्द सरस्वती ने ३१ दिसम्बर १८८० के दिन उन्हें एक पत्र में लिखा कि जनगणना में धर्म के रूप में वैदिक धर्म लिखवायें व जाति के स्थान पर वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रियादि) लिखवायें।

इस प्रकार आगरा में आर्यसमाज और गोकृष्यादि सभा की स्थापना कर स्वामीजी महाराज ने राजस्थान की ओर प्रस्थान किया।

अध्याय चार

वीरभूमि राजस्थान की ओर प्रस्थान

राजस्थान के प्राचीन वीरतापूर्ण इतिहास से दयानन्द सरस्वती प्रभावित थे। वे समझते थे कि यदि राजस्थान के राजाओं और ठाकुरों में वैदिक धर्म का प्रचार कर उनके जीवन को सुधार की दिशा में लाया जाये तो देश की अधिक उन्नति हो सकती है। राजा को देखकर प्रजा के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो सकता है। एक राजा के सुधरने से पूरी प्रजा के सुधरने की संभावना रहती है। प्रजा सुखी और समृद्ध भी हो सकती है। राजस्थान से दयानन्द सरस्वती को निमन्त्रण भी आ रहे थे।

आगरा से प्रस्थान कर स्वामीजी महाराज फाल्गुन शुक्ला दस स० १९३७ (दस मार्च सन् १८८१) के दिन भरतपुर पधारे। दस दिन तक यहाँ रहकर वार्तालाप द्वारा भक्तजनों को वैदिक आदर्श के विषय में उपदेश देते रहे।

भरतपुर से चैत्र वदी पाँच सं० १९३७(ई सन् 1881) के दिन जयपुर के लिए प्रस्थान किया। यहाँ गंगापोल के बाहर अचरोल के ठाकुर के उद्यान में निवास किया। एक दिन अचरोल के ठाकुर की हवेली में व्याख्यान दिया। जिज्ञासुजनों की शंकाओं का समाधान करते हुए उनकी ज्ञानपिपासा को शान्त किया। वैदिक धर्म के स्थायी तौर पर प्रचार के लिए "वैदिक धर्म सभा" की स्थापना की। यह सभा भविष्य में आर्यसमाज के रूप में परिणत हो गई।

जयपुर से वैशाख सुदी सप्तमी सं० १९३८(ई० सन् 1881) के दिन अजमेर पदार्पण किया। यहाँ सेठ फतहचन्द के उद्यान में डेरा लगाया। अजमेर में आर्यसमाज की स्थापना पहले ही हो चुकी थी। स्वामी जी के आगमन का सब ओर समाचार फैल गया। वैशाख सुदी दस से प्रतिदिन महाराज के व्याख्यान प्रारम्भ हो गए। व्याख्यान सरस और सरल भाषा में होते थे। साधारणजन भी शास्त्र के गूढ़ विषयों को भली-भाँति समझ सकते थे। बाइस दिनों में स्वामीजी ने छब्बीस व्याख्यान दिये। श्रोतागण नित्य बड़ी संख्या में अमृतपान करने आते थे। वे इस अमृत रस में इतना आनन्द अनुभव करने लगे कि व्याख्यान के समय के पूर्व ही सभास्थल पर पहुँचने का यत्न करते और अन्त तक शान्त भाव से श्रवण कर अपने घरों की ओर प्रस्थान करते थे।

वैदिक धर्म के प्रचार और प्रसाररूपी यज्ञ में हुतात्मा पं० लेखराम इन दिनों पेशावर में रहते थे। उनके मन में चिरकाल से स्वामी जी महाराज के दर्शनों की अभिलाषा बनी हुई थी। वे पेशावर से प्रस्थान कर ज्येष्ठ वदी चार सं० १९३८ (ई०सन् 1881) के दिन प्रातः काल महाराज की सेवा में उपस्थित हुए। दिव्य मूर्ति के दर्शन कर चरणस्पर्श के साथ अभिवादन किया। महाराज के आशीर्वाद के पश्चात् अपनी शंकाओं का निवारण किया। अन्य प्रश्नों के साथ महाराज से यह भी पूछा कि अन्य धर्मावलम्बियों को शुद्ध कर अपने समाज में सम्मिलित करना चाहिये या नहीं ? महाराज ने कहा कि वैदिक धर्म में विश्वास रखने वाले अन्य धर्मावलम्बियों को शुद्ध कर अवश्य अपने समाज में सम्मिलित करना चाहिये। अन्त में महाराज ने पं० लेखराम को आदेश दिया कि पच्चीस वर्ष की आयु से पूर्व विवाह न करना। विदाई के समय महाराज ने उपहार के रूप में पण्डितजी को अष्टाध्यायी की एक प्रति प्रदान की। अपने गुरु की आज्ञापालन में ही लेखराम का बलिदान हो गया।

मसूदा राज्य के ठाकुर साहब स्वामीजी महाराज के परम भक्त थे। आषाढ़ वदी बारह सं० १९३८ के दिन अजमेर से प्रस्थान कर स्वामीजी ने मसूदा में पदार्पण किया। ठाकुर साहब ने रामबाग की बारादरी में महाराज के निवास का प्रबन्ध किया। यहाँ ब्यावर के ईसाई पादरी शूलब्रेड तथा बिहारीलाल से महाराज की धर्म चर्चा हुई। जैन साधु सिद्धकरणजी से भी लिखित रूप में कुछ प्रश्नोत्तर हुए। मसूदा के किले में महाराज के व्याख्यानों का प्रबन्ध किया गया। उपदेशामृत का पान कर कुछ भक्त जनों ने महाराजा से यज्ञोपवीत ग्रहण करने की प्रार्थना की। विधिवत् यज्ञशाला का निर्माण कर उसे अलंकृत किया गया। चाँदी के चमचे बनवाए गए। अजमेर से हवन सामग्री मंगवाई गई। प्रथम दिन बत्तीस भक्तजनों ने यज्ञोपवीत धारण किया। इनमें अधिक संख्या जैनियों की थी। कुछ दिनों के पश्चात् पुनः महाराज से प्रार्थना कर सोलह भक्तजनों ने यज्ञोपवीत ग्रहण किया। इनमें भी अधिक संख्या जैनियों की थी।

मसूदा में मुसलमान बादशाहों के शासन काल में कुछ हिन्दू मुसलमान हो गए थे। इन मुसलमानों को अपनी जाति के हिन्दू अपनी कन्याएं विवाह के निमित्त अभी तक देते चले आते थे। महाराज ने उन्हें बुलवाकर समझाया कि अपनी कन्याओं को विधर्मियों को देकर क्यों अपनी जाति का नाश करते हो? अपनी कन्याओं को

स्वयं धर्मभ्रष्ट करते हो। यह अत्यन्त लज्जाजनक कार्य है। उस दिन से मसूदा में यह प्रथा बन्द हो गई। भविष्य के लिए हिन्दू कन्याओं का उद्धार हो गया।

मसूदा से भाद्रपद कृष्ण ९ सं० १९३८(ई० सन् 1881) के दिन स्वामीजी महाराज रामपुर पधारे। रामपुराधीश राव हरीसिंह के राज्य मन्त्री इलाहीबक्ष थे। इलाहीबक्ष के सहकारी उसके भतीजे करीमबक्ष थे। स्वामीजी महाराज ने राव हरीसिंह को कहा कि आपको यवनों को राज्य मन्त्री नहीं बनाना चाहिये। इससे राज्य की और धर्म की हानि होगी। वैसे भी ये सभी दासी पुत्र हैं। कुरान शरीफ के अनुसार इब्राहीम की दो स्त्रियाँ थी। एक विवाहित 'सारा' दूसरी दासी 'हाजिरा'। हाजिरा के गर्भ से इब्राहीम को पुत्र सन्तान प्राप्त हुई। पुत्र का नाम इस्माइल रखा गया।

रामपुर में रहते हुए स्वामीजी ने वेदाङ्ग प्रकाश का लेखन समाप्त किया। रामपुर से ब्यावर, मसूदा, बनेड़ा होते हुए दयानन्द सरस्वती कार्तिक सुदी ५ सं० १९३८ (२६ अक्टूबर सन् १८८१) के दिन चित्तौड़ पधारे।

मेवाड़ के अधिपति महाराणा सज्जनसिंह एक नवयुवक थे। उनका झुकाव कुछ नास्तिकता की ओर था। यद्यपि उदयपुर का राजधर्म शैव था पर शैव कहलाते हुए भी उनकी शैवमत में विशेष अभिरुचि नहीं थी। उनके निकट दो मुसलमान मनोविनोद के लिए रहते थे। वेश्याओं में उनका विशेष अनुराग था। उदयपुर के प्रतिष्ठित व्यक्ति मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या और कविराज श्यामलदास महाराणा की यह अवस्था देखकर दु:खित थे। वे महाराणा के पास जाकर कभी-कभी रामायण आदि धर्मग्रन्थों का पाठ सुनाने का प्रयत्न करते थे। समाचारपत्रों में से दयानन्द सरस्वती के संवाद भी पढ़कर सुनाया करते थे। महाराणा दयानन्द सरस्वती के संवादों को रुचिपूर्वक सुनते थे। पाण्डयाजी ने महाराणा को सत्यार्थ प्रकाश की भी एक प्रति भेंट की। सत्यार्थप्रकाश के कुछ अंश पढ़कर महाराणा के हृदय में दयानन्द सरस्वती के प्रति श्रद्धा के भाव अंकुरित हुए। वे दयानन्द सरस्वती के दर्शनों के लिए उत्सुक हो गए।

उस समय के भारत सरकार के प्रतिनिधि लार्ड रिपन महाराणा सज्जनसिंह को जी. सी. एस. आई. की उपाधि देना चाहते थे। महाराणा प्रताप के वंशज अपने आप को राजवंश के सूर्य समझते थे। वे इस प्रकार की उपाधि ग्रहण करना अपने

सम्मान के अनुकूल नहीं समझते थे। पर लार्ड रिपन ने महाराणा को इसके लिए बाध्य किया और यह आश्वासन दिया कि वे स्वयं चित्तौड़ आकर सम्मानपूर्वक उन्हें इस उपाधि से विभूषित करेंगे। इस अवस्था में महाराणा को भी स्वीकृति प्रदान करनी पड़ी। इस समारोह के लिए तेईस नवम्बर सन् १८८१ (संवत् 1938) का दिन निश्चित किया गया था।

समारोह में सम्मिलित होने के लिए मेवाड़ के सभी ठाकुर तथा सरदार चित्तौड़ आए हुए थे। शाहपुराधीश महाराजा नाहरसिंह भी इन दिनों चित्तौड़ में थे।

इस अवसर का पूरा सदुपयोग करने के लिए दयानन्द सरस्वती पाण्ड्या जी और कविराज जी के निमन्त्रण पर चित्तौड़ पधारे। गम्भीरी नदी के किनारे रुद्रेश्वर महादेव के मन्दिर के निकट महाराणा की अनुमति से स्वामीजी महाराज के निवास के लिए डेरे लगवा दिये गए। भक्तजन महाराज के उपदेशों का श्रवण करने आने लगे। शाहपुराधीश महाराजा नाहरसिंहजी स्वामीजी महाराज के डेरे पर उनके अमृतमय वचनों से अपने हृदय की ज्ञानपिपासा को शान्त करने आए। महाराजा नाहर सिंह स्वामीजी महाराज के परम भक्त बन गए। आजीवन उनके पदचिह्नों के अनुगामी बने रहे।

लार्ड रिपन के दरबार की समाप्ति के अनन्तर महाराणा सज्जनसिंह ने स्वामीजी महाराज को अपने दरबार में आमन्त्रित किया। स्वामीजी महाराज के दर्शन कर महाराणा ने नतमस्तक हो उनकी अभिवन्दना की। सम्मान के साथ उनसे आसन ग्रहण करने की प्रार्थना की। स्वयं शिष्य भावना के साथ उनके समीप बैठ गए।

दयानन्द सरस्वती ने महाराणा को राजनीति के विषय में उपदेश दिया। सदाचार के नियमों का प्रतिपादन करते हुए मद्यसेवन तथा वेश्या-संग के दोषदर्शन करवाए। दयानन्द सरस्वती के लागलपेट से रहित निर्भय प्रवचन को सुनकर महाराणा बहुत प्रभावित हुए। अब तक उन्होंने ऐसा स्पष्ट वक्ता व उपदेष्टा नहीं देखा था।

चार दिसम्बर १८८१ के दिन महाराणा सज्जनसिंह स्वयं स्वामीजी के डेरे पर पधारे। परम श्रद्धा के साथ महाराज के पास बैठकर धर्म और राजनीति के विषय में वार्तालाप करते रहे।

एक दिन दयानन्द सरस्वती कुछ राजाओं और जागीरदारों के साथ भ्रमण के

लिए जा रहे थे। मार्ग में एक मन्दिर के पास कुछ बालक–बालिकाएँ खेल रहे थे। इन में एक चार वर्ष की बालिका भी थी। स्वामीजी का मस्तक झुक गया। उनके साथ जाने वालों में से एक व्यक्ति ने कहा कि महाराज आप मूर्तिपूजा का खण्डन करते हैं, पर मन्दिर के सामने तो आपका मस्तक भी झुक गया। यह देव मूर्तियों का प्रभाव है।

स्वामीजी वहीं खड़े हो गए और उस कन्या की ओर संकेत करते हुए बोले–"देखो यह मातृशक्ति है जिसने हम सबको जन्म दिया है। मैं इसके प्रति सम्मान प्रदर्शित कर रहा हूँ, पत्थर की मूर्ति के प्रति नहीं।

स्वामी जी महाराज को बम्बई जाना था। वहाँ आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव था। किसी अन्य अवसर पर उदयपुर आने के लिए महाराणा को वचन देकर स्वामीजी महाराज इन्दौर होते हुए पौष सुदी एकादशी सं० १९३८(ई० सन् 1881) के दिन बम्बई पहुँच गये। कर्नल अल्कॉट तथा बम्बई आर्यसमाज के सदस्य रेलवे स्टेशन पर महाराज के स्वागत के लिए उपस्थित थे। बालुकेश्वर में गोशाला के स्थान पर महाराज ने आसन ग्रहण किया। कर्नल अल्कॉट भी बालुकेश्वर ठहरे हुए थे।

बम्बई की इस यात्रा में स्वामीजी महाराज ने यहाँ व्याख्यान, वार्तालाप तथा विद्वानों के साथ शास्त्रचर्चा द्वारा वैदिक धर्म के आदर्श को जनसाधारण के सामने रखा। बम्बई आर्यसमाज स्थापना के अवसर पर आर्यसमाज के २८ नियम स्थिर किये गए थे। लाहौर में इन नियमों में परिवर्तन कर दस नियम स्वीकार किये गए थे। बम्बई आर्यसमाज में भी इन दस नियमों को स्वीकृति प्रदान की गई। थियासोफिकल सोसाइटी के आर्यसमाज के साथ सदा के लिए सम्बन्ध विच्छेद की घोषणा की गई। परिणामस्वरूप कर्नल अल्कॉट और मैडम ब्लेवट्सकी का बम्बई में प्रभाव शिथिल पड़ गया। वे यहाँ से मद्रास चले गए।

भारत में गोहत्या को देखकर दयानन्द सरस्वती का मन बहुत चिन्तित था। वे गोवंश को देश का प्राण समझते थे। गोवंश जहाँ अमृतमय दुग्ध से हम सब को तृप्त करता है वहाँ कृषि आदि कार्य भी इनके बिना नहीं हो सकते। गोहत्या को रोकने के प्रति ऋषि का दृष्टिकोण न केवल नैतिकता का था अपितु लोगों को इस कृषि प्रधान देश में उसके आर्थिक उपयोग का भी था। इस प्रकार गोवंश देश का अन्नदाता भी है।

स्वामीजी महाराज ने गोरक्षा के विषय में सब धर्मावलम्बियों के साथ

विचारविमर्श कर लार्ड रिपन के द्वारा महारानी विक्टोरिया के पास भेजने के लिए एक निवेदन पत्र तैयार किया। वे चाहते थे कि इस निवेदन पत्र पर करोड़ों की संख्या में सभी विचारों के भारतीयों के हस्ताक्षर करवाकर महारानी की सेवा में प्रस्तुत किया जाए। इसी उद्देश्य से भारत के विभिन्न भागों में हस्ताक्षर करवाने के निमित्त यह निवेदन पत्र भेजा गया। दुर्भाग्यवश सं० १९४० के दीपावली के अवसर पर स्वामीजी महाराज का बलिदान हो गया। इस से निवेदन पत्र का उद्देश्य पूर्ण न हो सका।

बम्बई में महाराज दिन का अधिक समय वेद-भाष्य लिखाने में व्यतीत करते थे। बम्बई से दयानन्द सरस्वती खण्डवा, इन्दौर, रतलाम, जाबरा आदि नगरों में भक्तजनों को उपदेशामृत का पान कराते हुए श्रावण सुदी ९ सं० १९३९(25 जुलाई 1882) के दिन पुनः चित्तौड़ पहुँचे। दो सप्ताह यहीं निवास किया। चित्तौड़ के प्राकृतिक दृश्यों और प्राचीन वीरतामय इतिहास से प्रभावित होकर दयानन्द सरस्वती चाहते थे कि यहाँ वेदादि शास्त्रों के स्वाध्याय के निमित्त एक गुरुकुल की स्थापना की जाए। स्वामीजी महाराज के अनन्यभक्त ब्रह्मचारी युधिष्ठिर (स्वामी ब्रह्मानन्द जी) ने उनकी इस इच्छा को क्रियात्मक रूप प्रदान किया।

चित्तौड़ से प्रस्थान कर श्रावण वदी बारह सं० १९३९ (११ अगस्त सन् १८८२) के दिन स्वामीजी महाराज उदयपुर पहुँच गए। उदयपुर में महाराणा सज्जनसिंह की ओर से नौलखा बाग (सज्जन-विलास) में महाराज के निवास का प्रबंध किया गया।

महाराज के पधारने के दूसरे दिन महाराणा सज्जनसिंह कुछ प्रतिष्ठित राजकर्मचारियों के साथ उनसे मिलने के लिए आए। बाद में प्रतिदिन एक दिन प्रातः, दूसरे दिन सायंकाल महाराणा स्वामीजी महाराज के निवास स्थान पर उनसे मिलने आया करते थे। स्वामीजी महाराज के उपासना से निवृत्त होने पर महाराणा उनके साथ बाग में घूमते हुए विविध विषयों पर वार्तालाप करते।

एक दिन महाराणा सज्जनसिंह ने संस्कृत पढ़ने की इच्छा प्रकट की। महाराज ने सहर्ष स्वीकार कर उन्हें सरल विधि से संस्कृत का बोध कराते हुए मनुस्मृति के ७, ८, ९ अध्याय पढ़ाए। महाभारत के उद्योग पर्व और वन पर्व में से कुछ चरित्रगठन और राजनीति विषयक सन्दर्भ सुनाए। विदुर नीति के मर्म भी समझाए।

महाराणा की दिनचर्या को नियन्त्रित किया। राजभवन में प्रतिदिन नियमानुसार अग्निहोत्र करने का आदेश दिया। एक बार राज्य में बृहद् यज्ञ करवाया जिस में महाराणा से पूर्णाहुति दिलवाई। महाराणा को वेश्यावृत्ति तथा अन्य अनाचारों से परे रहने का आदेश दिया, जिसका महाराणा ने यथावत् पालन किया और अपने जीवन में अनेक सुधार किये। स्वामी जी चाहते ही यह थे कि राजाओं का चरित्र सुधरे जिससे प्रजा भी योग्य बन सके।

हिन्दुओं में एकता की दृष्टि से महाराणा ने स्वामी जी को मूर्तिपूजा का खण्डन छोड़ कर एकलिंग मन्दिर का आधिपत्य स्वीकार करने का आग्रह किया, जिसकी उस समय लाख रुपये आय थी।

महाराणा के इस प्रस्ताव पर स्वामीजी गम्भीर होकर बोले–महाराणा! आप मुझे प्रलोभन देकर उस सर्वशक्तिमान् जगन्नियन्ता प्रभु की आज्ञा को भङ्ग करवाना चाहते हैं? यह छोटा–सा राज्य व इस मन्दिर की सम्पत्ति मुझे उस सर्वनियन्ता की आज्ञा का उल्लघंन करने की ओर प्रवृत्त नहीं कर सकती। मैं एक दौड़ में आपके राज्य से बाहर जा सकता हूँ, पर विश्वव्यापी परमेश्वर की छत्रछाया से परे नहीं हो सकता। वेद की आज्ञा उसकी आज्ञा है। मैं उसका परित्याग नहीं कर सकता। कोई शक्ति मुझे सत्यमार्ग से विचलित और असत्य की ओर झुका नहीं सकती। असत्य का खण्डन और सत्य का प्रकाश करना मेरा कर्त्तव्य है। भविष्य में आप मुझे ईश्वर आज्ञा भंग करने की बात कभी न कहियेगा।

दयानन्द सरस्वती की निर्भय गर्जना को सुनकर महाराणा स्तम्भित रह गए। अभी तक उन्होंने अपनी हाँ में हाँ मिलाने वाले प्रशंसावादी पण्डित ही देखे थे। स्वामीजी महाराज के इस उत्तर को सुनकर क्षमायाचना करते हुए महाराणा बोले–महाराज! मैं यह देखना चाहता था कि आप अपने सिद्धान्तों पर कितने दृढ़ हैं! मुझे परम सन्तोष है कि आप किसी प्रलोभन अथवा भय के कारण सत्य से विचलित नहीं हो सकते। मेरा अपराध क्षमा कीजिये।

एक दिन मोहनलाल पाण्ड्या ने स्वामीजी महाराज से प्रश्न किया कि आर्यावर्त देश का पूर्ण हित और जातीय उन्नति कब होगी ?

महाराज ने कहा–प्रिय मोहनलाल, इस देश का उत्थान तभी सम्भव है जब

हमारा एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य हो। यदि सभी नरेश अपने राज्यों में धर्म, भाषा और भाव की एकता स्थापित करने का यत्न करें तो इस देश का भविष्य उज्जवल बन सकता है, यही इसकी उन्नति का एक मार्ग है।

मोहनलाल ने महाराज के कथन पर आशंका प्रकट करते हुए कहा– महाराज! जिस रूप में आप भावों में एकता चाहते हैं उस दृष्टि से फिर मतमतान्तरों का खण्डन क्यों करते हैं। इससे परस्पर भेद भावना को प्रोत्साहन मिलता है।

स्वामीजी ने कहा–देखो! **जब धर्माचार्यों और देश के नेताओं की असावधानता, अविवेक एवं प्रमाद से जाति के आचार-विचार तथा आदर्श दूषित हो जाते हैं तब उनमें भावों की एकता नहीं रह सकती।** आर्य जाति इस समय पतन की दिशा में जा रही है। हमारे धर्माचार्यों के अविवेकपूर्ण और संकीर्ण दृष्टिकोण से करोड़ों की संख्या में आर्य सन्तान आज मुसलमान और ईसाई हो रही है। यदि इसे संभाला न गया तो इसका शीघ्र ही अन्त हो जाएगा। अपनी स्वार्थ–सिद्धि के निमित्त जाति को विनाश की दिशा में ले जाने वाले इन धर्माचार्यों का दृष्टिकोण तभी बदल सकता है जब सत्य की तीक्ष्ण धारा से असत्य, पापाचरण, अनैतिक प्रथाओं और कुरीतियों का समूल उच्छेद किया जाय। इसके लिए कठोर और कटुतापूर्ण उपायों का आश्रय लेने के सिवाय कोई उपाय नहीं। मैं किसी स्वार्थवश यह कार्य नहीं कर रहा। इस कार्य में मैं अनेक कष्ट सहन कर रहा हूँ। स्वार्थी पुरुष मुझे गालियाँ देते हैं। ईंट पत्थर मारते हैं। सभी तरह से मेरे प्राण–हरण का प्रयत्न करते हैं। तलवार का भय दिखाते हैं। चोरी से खाने की वस्तुओं में विष देते हैं। प्रलोभन भी देते हैं। आर्य जाति की रक्षा तथा वैदिक धर्म के पुनरुत्थान के लिए मैं यह सब सहन करता हूँ और करूँगा क्योंकि वैदिक धर्म के पुनोंत्थान के बिना राष्ट्र का उत्थान संभव ही नहीं है।

दयानन्द सरस्वती के वचन सुनकर भक्त मोहनलाल पाण्ड्या भाव विभोर होकर बोले–प्रभो! यदि आप जैसे दो–तीन धर्माचार्यों का इस देश में अवतरण हो जाय तो वास्तव में आर्य जाति की यह डूबती नैय्या शीघ्र सकुशल पार हो जाय।

एक दिन कविराज श्यामलदास ने महाराज से निवेदन किया कि–महाराज ! भक्तजन आपके स्मारक चिह्न का निर्माण करना चाहते हैं।

महाराज ने उसे सावधान करते हुए कहा–ऐसा कभी न करना। मेरे भौतिक

देह के त्याग के बाद इसकी भस्म को किसी खेत में डाल देना। स्मारक बनाने से भविष्य में उसके द्वारा मूर्तिपूजा को प्रोत्साहन मिलता है।

दयानन्द सरस्वती दूरदर्शी थे, ऋषि थे, कोई इस प्रकार की प्रथा नहीं स्थापित करना चाहते थे जिन से आने वाले भक्तजनों में मिथ्याचार का प्रचार हो।

उदयपुर में रहते हुए दयानन्द सरस्वती अधिक समय वेदभाष्य की रचना में व्यतीत करते थे।

परोपकारिणी सभा का गठन

कोई मनुष्य इस संसार में सदा बना नहीं रहता। जिसने जन्म लिया है उसे इस जीवन का अन्त भी देखना पड़ेगा। दयानन्द सरस्वती का जीवन सदा संकटमय बना हुआ था। ईसाई, मुसलमान, पौराणिकपन्थी तथा चक्राङ्कित सम्प्रदाय सभी उनके इस शरीर का विनाश करने के लिए उद्योगशील थे। कई बार उन्हें विष दिया गया। उन पर घातक आक्रमण की चेष्टा की गई। इसी कारण दयानन्द सरस्वती जी महाराज जब जुलाई से सितम्बर सन् १८८०(संवत् १९३८) में मेरठ में थे तब उन्होंने परोपकारिणी सभा की स्थापना का निश्चय किया था।

इन परिस्थितियों में वे चाहते थे कि इस शरीर से मुक्ति पाने के अनन्तर उनका काम यथावत् चालू रहे। वैदिक ग्रन्थों के निर्माण और प्रकाश का कार्यक्रम सदा जारी रहे। भारत के बाहर विदेशों में भी वैदिक धर्म के प्रचार का विस्तार किया जाए। अनाथ और दीनजनों की शिक्षा और पालन की ओर विशेष ध्यान दिया जाय। धर्म और परमार्थ का काम उत्साह, पुरुषार्थ, गम्भीरता और उदारता के साथ सदा होता रहे। आर्यों का निर्माण सदा होता रहे जिसे वे स्वयं जीवनभर करते रहे थे।

अपने शेष जीवनकाल में तथा इस देह के परित्याग के बाद इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दयानन्द सरस्वती ने एक स्वीकार पत्र (वसीयतनामा) बनाया। तेइस सज्जनों की एक "परोपकारिणी सभा" का निर्माण कर उसे अपनी सम्पत्ति का अधिकारी बना दिया।

इन तेईस व्यक्तियों में उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह को इस सभा का प्रधान नियुक्त किया। अन्य सदस्यों में शाहपुराधीश महाराजा नाहरसिंह, प्रसिद्ध समाज सुधारक राव बहादुर गोविन्द रानाडे पूना, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के संस्कृत के

प्रोफेसर श्यामजी कृष्ण वर्मा, बम्बई कौंसिल के सदस्य राव बहादुर पं० गोपालराव देशमुख, स्वामीजी के भक्त राजा जय किशनदास मुरादाबाद, ला० साईंदास लाहौर आदि थे।

स्वीकारपत्र के नियमों में प्रथम नियम, जिसमें इसके उद्देश्यों को स्पष्ट किया गया है, इस प्रकार हैं:–

उक्त सभा जैसे कि मेरी जीवित अवस्था में मेरे समस्त पदार्थों की रक्षा करके निम्नलिखित परोपकार के कामों में लगाने का अधिकार रखती है वैसे ही मेरे पीछे अर्थात् मरने के पश्चात् भी लगाया करे।

१. वेद और वेदाङ्गादि शास्त्रों के प्रचार, अर्थात् उनकी व्याख्या करने कराने, पढ़ने–पढ़ाने, सुनने–सुनाने, छापने–छपवाने आदि में।

२. वेदोक्त धर्म के उपदेश और शिक्षा, अर्थात् उपदेश मण्डली नियत करके देश–देशान्तर और द्वीप–द्वीपान्तरों में भेज कर सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग आदि में।

३. आर्यावर्त के अनाथ और दीन जनों की शिक्षा और पालन में खर्च करे और करावे।

इन उद्देश्यों का स्पष्टीकरण करते हुए तेरह अन्य नियम कार्य संचालन के लिए बनाए।

फाल्गुन वदी सात सं० १९३९ वि०(ई० सन् 1883) तक स्वामीजी महाराज उदयपुर में रहे। विदाई के समय महाराणा ने स्वामीजी महाराज को एक कृतज्ञतासूचक सम्मानपत्र प्रदान किया। उसके साथ आशा प्रकट की कि वे पुनः अपने दर्शन से कृतार्थ करते रहेंगे।

उदयपुर से प्रस्थान कर चित्तौड़ होते हुए दयानन्द सरस्वती फाल्गुन की अमावस्या के दिन शाहपुरा पहुँचे। लार्ड निपन के दरबार के समय चितौड़ में शाहपुराधीश महाराजा नाहर सिंह दयानन्द सरस्वती के सत्सङ्ग से लाभ उठाया करते थे। उनके सत्योपदेश से प्रभावित होकर शाहपुराधीश ने स्वामीजी महाराज से प्रार्थना की थी–भगवन्, आप कृपा करके हमारे राज्य में भी पधारकर प्रजाजनों को अपने उपदेशामृत से तृप्त करें। स्वामीजी महाराज ने शाहपुराधीश की विनीत प्रार्थना को

स्वीकार करते हुए निकट भविष्य में अवसर पाकर आने के लिए आशा प्रकट की थी।

शाहपुरा में राजकीय उद्यान में डेरा डालकर स्वामीजी महाराज के निवास का प्रबन्ध किया गया। सायंकाल के समय शाहपुराधीश महाराजा नाहरसिंह राज्य के सम्मानित व्यक्तियों के साथ महाराज की सेवा में कुशल क्षेम पूछने के निमित्त आए।

यहाँ रहते हुए महाराज का अधिक समय वेदभाष्य में व्यतीत होता था। कुछ समय श्रद्धालु भक्तजनों को उपदेश देते और उनकी शंकाओं का समाधान करते थे।

सायंकाल छः बजे से नौ बजे तक शाहपुराधीश स्वामीजी महाराज के चरणों में बैठकर उनसे शिक्षा ग्रहण करते थे। एक घण्टा धर्म चर्चा तथा धर्म सम्बन्धी संशयों का निवारण होता था। दो घण्टे शास्त्रों के अध्ययन के निमित्त निश्चित थे। इस समय में महाराज ने शाहपुराधीश को मनुस्मृति, पातञ्जल योगदर्शन और वैशेषिक दर्शन के कुछ अंशों का अध्ययन कराया। प्राणायाम विधि का भी उपेदश दिया।

स्वामीजी महाराज के उपदेशों से प्रभावित होकर महाराज ने राजभवन में यज्ञशाला का निर्माण कराया, यहाँ नित्य हवन होने लगा।

जोधपुर में प्रचार कार्य

जोधपुर में कर्नल सर प्रतापसिंह तथा रावराजा तेजसिंह दयानन्द सरस्वती के परमभक्त थे। दयानन्द सरस्वती के उदयपुर निवास के दिनों में उन्होंने स्वामीजी महाराज से जोधपुर पधारने के लिए विनयपूर्वक प्रार्थना की थी। उन्होंने जोधपुराधीश महाराजा जसवन्तसिंह से निवेदन कर स्वामीजी महाराज को जोधपुर पधारने के लिए निमन्त्रण भिजवाया। दयानन्द सरस्वती राजस्थान के राजाओं में प्राचीन वैदिक आदर्श को पुनः स्थापित करना चाहते थे। जोधपुर नरेश का निमन्त्रण पाकर उन्होंने जोधपुर जाने का निश्चय कर लिया। ज्येष्ठ वदी चार सं० १९४० वि० का दिन भी प्रस्थान के लिए निश्चित हो गया।

शाहपुराधीश महाराजा नाहरसिंह को जिस समय यह सूचना मिली, वे स्वामीजी महाराज के पास आए। चिन्ता भरे चित्त से विनयपूर्वक महाराज से प्रार्थना की : 'महाराज! आप वहाँ वेश्याओं के विषय में आलोचना न कीजियेगा।' जोधपुराधीश का नन्हीं जान वेश्या से स्नेह सम्बन्ध था। शाहपुराधीश जानते थे कि स्वामीजी महाराज निर्भय, सत्य के वक्ता हैं। वे इसी सोच में थे कि कहीं निर्भय

सत्यवक्ता होने के कारण उनके शरीर को कोई स्वार्थ के वशीभूत होकर हानि न पहुँचाए।

स्वामीजी महाराज ने अपने स्वभाव के अनुसार साहसपूर्ण उत्तर दिया–मैं कंटीले वृक्षों को नहुरने से नहीं काटता। उसके लिए अति तीक्ष्ण शस्त्रों की आवश्यकता होगी।

शाहपुरा से जोधपुर के लिए प्रस्थान करते समय स्वामीजी अजमेर पधारे। यहाँ सेठ फतहमल की कोठी पर विश्राम किया। स्वामीजी महाराज के भक्त रावबहादुर गोपालराव हरि देशमुख के सुपुत्र लक्ष्मणराव (खानदेश के असिस्टैण्ट कलक्टर) अजमेर में स्वामीजी महाराज से योगाभ्यास के रहस्यों को समझने के लिए आए। महाराज ने उन्हें एकान्त में योगविषयक शिक्षा दी।

अजमेर से जोधपुर की ओर प्रस्थान करने से पूर्व भक्त मण्डली ने महाराज से मारवाड़ न जाने का अनुग्रह किया।

महाराजा ने गर्जना के साथ उत्तर दिया–"यदि वे लोग हमारी अंगुलियों की बत्तियां बनाकर जला दें, तो भी कोई चिन्ता नहीं। मैं वहाँ जाकर सत्योपदेश ही दूंगा।"

अजमेर से पाली स्टेशन तक महाराज रेल में आए। उन दिनों पाली से जोधपुर तक रेलवे लाइन न थी। पाली में जोधपुराधीश की ओर से एक हाथी, तीन रथ, एक सेज गाड़ी, तीन ऊंट, ऊटों के साथ चार सवार तैयार थे। मार्ग में वर्षा के कारण एक दिन रोपट में विश्राम कर दूसरे दिन जोधपुर के लिए प्रस्थान किया। जब जोधपुर दो कोस रह गया, महाराज सवारी से उतर कर पैदल चल पड़े।

जोधपुर में नज़र बाग के सामने फैज़ुल्लाखां की कोठी पर महाराज के निवास का प्रबन्ध था। रावराजा जवानसिंह राज्य की ओर से स्वामीजी के स्वागत के लिए कोठी से कुछ आगे मार्ग पर चले गए। कर्नल प्रतापसिंह और राव राजा तेजसिंह, महाराज के स्वागत के लिए कोठी पर प्रतीक्षा कर रहे थे।

सामने से काषाय वस्त्र धारण किये, हाथ में दण्ड लिए ऊँचे कद का संन्यासी आ रहा था। उन्नत मस्तक, गौरवर्ण, तेजस्वी मुखमण्डल था। प्रातःकालीन सूर्य की ज्योति से इसकी छवि अवर्णनीय थी। मांसपेशियाँ सुसंगठित थीं। छाती ताने चल रहा था। गति में उत्साह था। होंठों में मृदुहास्य था। ईश्वर विश्वास और सत्य की

उपासना की आभा थी। शान्ति और सन्तोष की भावना थी। कर्नल और रावराजा इस मूर्ति को देखकर स्तम्भित हो गए।

श्रद्धाभरी भावना से भक्त मण्डली ने महाराज की अभिवादन की। महाराज ने भी "नमस्ते" शब्द से उनका अभिवादन किया।

स्वामीजी महाराज के निवास और भोजन आदि की सुव्यवस्था कर दी गई। जोधपुर नरेश महाराज जसवन्तसिंह कुछ अस्वस्थ थे। उनके गले में पीड़ा थी, अतः वे कुछ दिन महाराज की सेवा में नहीं आ सके। स्वास्थ्य लाभ होने पर महाराज जसवन्तसिंह शिष्ट मण्डल के साथ स्वामीजी महाराज के निवास स्थान पर दर्शन के लिए गए। चरणों में प्रणाम कर आसन ग्रहण किया। कुशलक्षेम के प्रश्नोत्तर के बाद महाराजा ने अमृतोपदेश श्रवण करने की इच्छा प्रकट की। स्वामीजी ने मनुस्मृति के अनुसार राजधर्म का उपेदश दिया। स्वदेश प्रेम, प्रजापालन, न्याय व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में उचित परामर्श दिया। देशद्रोह और पारस्परिक फूट के दोषों पर प्रकाश डाला। तीन घण्टे तक महाराजा को राजनीति के तत्वों को समझाते रहे।

दूसरे दिन से फैज़ुल्लाखाँ की कोठी पर स्वामीजी के व्याख्यानों का प्रबन्ध हो गया। प्रतिदिन सायंकाल महाराज अपने निवास स्थान पर भक्तजनों को उपदेश देते और उनके संशयों का निवारण करते। दिन के समय नित्य कर्मों से निवृत्त होकर वेदभाष्य लिखवाते तथा सत्यार्थप्रकाश और संस्कार विधि से प्रूफों का संशोधन करते थे। जोधपुर निवासियों के लिए स्वामीजी के व्याख्यानों में नवीनता थी। वे एक निराकार ईश्वर की उपासना, सदाचार और गोरक्षा पर विशेष बल देते थे। बाल-विवाह, मृतक श्राद्ध आदि के खण्डन से यहाँ के पुजारी और पुरोहित महाराज के विरुद्ध हो गए। इससे उनकी जीविका पर प्रभाव पड़ता था। चक्रांकित सम्प्रदाय का भी जोधपुर में बहुत प्रचार था। एक दिन स्वामीजी ने अपने व्याख्यान में इस सम्प्रदाय की भी कड़ी आलोचना की। इस प्रकार चक्रांकित सम्प्रदाय को मानने वाला जन समुदाय भी महाराज से रुष्ट हो गया अर्थात् जनसाधारण की उन्नति के लिये स्वामीजी अनेकों से शत्रुता लेने को तैयार थे।

फैज़ुल्लाखाँ जोधपुर के राजकर्मचारियों में थे। जोधपुर नरेश इन्हें बहुत मान्यता देते थे। इसलिए प्रजा में इनका प्रभाव था। एक दिन महाराज अपने व्याख्यान

में ईसाई धर्म की आलोचना कर रहे थे, व्याख्यान के बीच में फैज़ुल्लाखाँ का भतीजा मोहम्मद हुसैन तलवार की मूठ पर हाथ रखकर खड़ा हो गया और बोला–आप इस्लाम के विषय में कुछ न कहियेगा। महाराज ने निर्भय होकर कहा तुम अभी अनुभवहीन बच्चे हो। तुम्हें केवल तलवार की मूठ पर हाथ धरना ही आता है। उसे म्यान से निकाल नहीं सकते। मैं इन गीदड़ भभकियों से भयभीत होने वाला नहीं हूँ। इसके उपरान्त इस्लामी मत की तर्कहीन बातों को खूब उजागर किया। इस प्रकार मुसलमान भी महाराज के वैरी बन गए।

वेश्यावृत्ति के स्वामीजी घोर विरोधी थे। जोधपुर नरेश और वहाँ के रईस इस रोग के असाध्य रोगी थे। क्षत्रियों के आचार और कर्त्तव्य पर उपदेश देते हुए स्वामीजी महाराज वेश्यावृत्ति का कठोर शब्दों में विरोध करते थे। सभी के लिये इसे एक निन्दनीय कर्म मानते थे।

जोधपुर में इन दिनों चार प्रकार की जनशक्ति थी। पुराणपन्थी हिन्दू, चक्रांकित, मुसलमान और जागीरदार। सभी अपने स्वार्थों और कुरीतियों के खण्डन से दयानन्द सरस्वती के विरोधी हो गए।

उदयपुर और शाहपुर निवास के समय दयानन्द सरस्वती को वहाँ के नरेशों का सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ था। वहाँ के नरेशों ने महाराज के उपेदशों को श्रद्धा से सुना। उसके अनुसार आचरण किया। मद्यपान और वेश्यासंग आदि दुर्व्यसनों का परित्याग किया। प्राचीन राजनीति और धर्म सम्बन्धी ग्रन्थों का स्वाध्याय आरम्भ किया। इस प्रकार उनके जीवन में सुधार हुआ। प्रजा की उन्नति और न्याय व्यवस्था की ओर भी उनका ध्यान अधिक आकर्षित हुआ।

जोधपुर की स्थिति इससे सर्वथा भिन्न थी। जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह नन्हीं जान नामक वेश्या में आसक्त थे। उन पर महाराज के उपदेशों का इस दिशा में कोई प्रभाव न पड़ा। वे वेश्या के पंजे से छुटकारा न पा सके।

दयानन्द सरस्वती राजस्थान के महाराजाओं को सुधार की दिशा में ले जाने के इच्छुक थे। इसी उद्देश्य से वे अन्य प्रान्तों के निमन्त्रण आने पर भी वहाँ नहीं गए। राजस्थान में ही अपना कार्यक्रम निश्चित रखा।

स्वामीजी महाराज के उपदेशों से जोधपुर की प्रजा में धार्मिक दृष्टि से क्रान्ति

हो गई। उनके सामने इस्लाम और ईसाई धर्म का खोखलापन आ गया। पुराणपन्थ और चक्रांकितों की लीलाओं के कुत्सित स्वरूप को भी वे समझने लगे। जागीरदारों के वेश्यासंग आदि अनाचारों के प्रति उनकी आदर भावना न रही। वैदिक सत्य धर्म का धीमा प्रकाश उनके हृदयों में समा गया। इस कारण वहां के सभी सम्प्रदायों के नेता और जागीरदार दयानन्द सरस्वती के विरोधी बन गए।

जोधपुर नरेश की उदासीन वृत्ति के कारण दयानन्द सरस्वती जोधपुर छोड़कर अन्यत्र जाने का विचार करने लगे। चार मास के जोधपुर निवास काल में महाराजा जसवन्तसिंह स्वामीजी महाराज के पास तीन बार मिलने आए। स्वामीजी महाराज भी तीन बार जोधपुर नरेश के भवन में गए। सभी अवसरों पर स्वामीजी महाराज ने उन्हें राजधर्म, क्षत्रियों के कर्त्तव्य और सदाचार के विषय में उपेदश दिया। महाराजा जसवन्तसिंह ने श्रद्धा से स्वामीजी महाराज के उपदेशों का श्रवण किया, पर उनके अनुसार अपना आचरण न बना सके। नन्हीं जान वेश्या में उनकी आसक्ति बनी रही।

एक बार दयानन्द सरस्वती के देहावसान के बाद भाटी अर्जुनसिंह और नन्हीं जान परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। उन्होंने दयानन्द सरस्वती के विषय में कुछ अनुचित शब्दों का प्रयोग किया। महाराजा जसवन्तसिंह ने सुन लिया और आवेश भरे शब्दों में कहा–कि तुम उनके महत्व को नहीं जानते। यदि मैं महाराजा तख्तसिंह (उनके पिता) का सच्चे अर्थों में पुत्र हूँ तो सत्य कहता हूँ कि यदि स्वामी दयानन्द इस समय जीवित होते तो मैं संन्यास ग्रहण कर उनके साथ चला जाता।

दयानन्द सरस्वती ने जोधपुर नरेश को उनकी अपने आचरणों के सुधार के प्रति उपेक्षावृत्ति को देखते हुए कई पत्र लिखे। अन्त में एक पत्र लिखा जिसमें राज्य के शासन सुधार तथा प्रजाहित के सम्बन्ध में परामर्श देते हुए उनके निजी आचरणों पर प्रकाश डाला और स्पष्ट शब्दों में लिखा कि वेश्या नन्हीं जान के प्रति आप की विशेष आसक्ति है और राजवंशीय महारानियों के प्रति उपेक्षावृत्ति है। यह आपका जैसा व्यवहार है उससे आप अपनी मान–मर्यादा को भङ्ग कर रहे हैं। जिस प्रकार पागल कुत्ते का विष शरीर में फैल जाता है तो उससे छुटकारा पाना कठिन हो जाता है, उसी प्रकार वेश्याओं की संगति, मद्यपान, पतङ्ग उड़ाने में समय का व्यर्थ यापन, चौपड़

तथा इसी प्रकार के अन्य दुर्व्यसनों में मग्न रहना अत्यन्त हानिकारक है, ये जीवन को नाश की दिशा में ले जाते हैं। राज्य को अधोगति की ओर ले जाते हैं। मुझे बहुत आश्चर्य होता है कि आप जैसे बुद्धिमान्, साहसी और सद्गुण सम्पन्न व्यक्ति इस प्रकार दुर्व्यसनों का परित्याग नहीं करते। यदि आप इन दुर्व्यसनों में फंसे रहेंगे तो आपकी संतान भी ये अवगुण आप से सीखकर पतन की ओर जायेगी।

आप कृपा करके राजकुमार को शिक्षा देने के लिए मुसलमान और ईसाई शिक्षक नियुक्त न करें अन्यथा वे उनकी बुराइयाँ ही सीखेंगे। अपनी राजकीय शुभ परम्पराओं को भूल जाएंगे, वैदिक धर्म से भी विमुख हो जाएंगे। जो शिक्षा उन्हें ईसाई और मुसलमान शिक्षकों से मिलेगी, उसके अनुसार इनके संस्कार दृढ़ हो जाएँगे। भविष्य में उनसे छुटकारा पाना कठिन हो जाएगा। आपको महाराजकुमार के सब संस्कार वैदिक विधि से करने चाहियें। उसे पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्यपूर्वक रहने दीजिएगा। जैसे कि आपने गणेश पुरी (यह एक चक्राङ्कित महाराजा का मिथ्या प्रशंसावादी था) का संग छोड़ दिया है उसी प्रकार इन मधुरभाषिणी धोखा देने वाली वेश्याओं का संग क्यों नहीं छोड़ते? आपको वेश्याओं की संगति में रहकर अपने बहुमूल्य समय और सद्गुणों को नहीं खोना चाहिए। आपका जीवन इन्द्रियलोलुपता और विलास के लिए नहीं है। **यह जीवन लाखों प्रजाजनों का भला करने, राज्यकार्य में कठिन प्ररिश्रम करने, प्रजापालन में रत रहने और उचित न्याय प्रदान करने के लिए है।**

मनुस्मृति के सप्तम, अष्टम और नवम अध्यायों में राजा के कर्त्तव्यों और न करने योग्य कार्यों का प्रतिपादन किया गया है। आप उनका अध्ययन करें। मुझे विश्वास है कि आप मेरे इन परामर्शों पर पूर्ण विचार करेंगे। मेरे परामर्श कटु अवश्य हैं, पर इनसे आपका कल्याण होगा। आप वास्तविक शान्ति प्राप्त करेंगे।

महर्षि की जीवनकथाओं में वर्णन आया है कि–एक दिन की घटना है–दयानन्द सरस्वती जब जोधपुर नरेश के भवन में उनसे मिलने गए, उस समय उनकी प्रिय वेश्या नन्हीं जान महाराजा के पास बैठी हुई थी। दयानन्द सरस्वती को आते देखकर महाराजा ने नौकरों से कह कर नन्हीं जान को डोली में बिठाकर बाहर भेजने का प्रयत्न करते हुए डोली पर अपना कंधा भी लगाया। स्वामीजी महाराज ने

यह देख लिया। उन्हें इस घटना को देखकर बहुत दुःख हुआ। वे एक क्षत्रिय नरेश का इस प्रकार पतन नहीं सह सकते थे। उन्होंने जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह को दो-तीन घण्टे राजनीति और क्षत्रियोचित आचार-व्यवहार पर उपदेश देते हुए कहा—क्षत्रिय राजा सिंह के समान समझे जाते हैं। वेश्याओं का स्थान समाज में कुतियों के समान है। सिंहों को कुतिया के साथ सम्बन्ध कहां तक शोभा देता है ?

महाराजा जसवन्तसिंह का सिर लज्जा से झुक गया। नन्हीं जान को जब यह समाचार मिला तो उसके क्रोध की सीमा न रही। उस के मन में यह भय उत्पन्न हो गया कि कहीं महाराजा जसवन्तसिंह उसे छोड़ न दें। वैर और बदला लेने की भावना उसके मन में दृढ़ हो गई।

स्वामी जी पर अन्तिम विष-प्रयोग

पच्चीस सितम्बर की रात्रि के समय स्वामीजी महाराज का सेवक कल्लू कहार उनके छः सात सौ रुपये का सामान चोरी करके खिड़की के मार्ग से भाग गया। यह कहार महाराज की परिश्रम और प्रेम से सेवा करता था। ब्रह्मचारी रामानन्द (स्वामीजी का शिष्य) को स्वामी जी महाराज ने आदेश दे रखा था कि वह खिड़की के आगे सोया करे। वह भी उस दिन वहाँ न सोया। जिस कोठी में महाराज निवास कर रहे थे, उस के पहरेदार भी उसी दिन निद्रा के वशीभूत हो गए।

कल्लू कहार स्वामीजी महाराज के साथ ही पहली बार जोधपुर आया था। वह जोधपुर के अन्दर बाहर से अपरिचित था।

जोधपुर का शहर कोतवाल मोहिनुद्दीनखाँ तथा अन्य पुलिस अधिकारी शीघ्र सूचना पाने पर भी चोर की तलाश करने में असमर्थ रहे। इसमें क्या रहस्य है यह इतिहास के सूक्ष्म विवेचक ही बतला सकते हैं।

स्वामीजी महाराज से पूछा गया कि आप किस-किस व्यक्ति पर चोरी में भाग लेने का सन्देह करते हैं ? महाराज ने अपने सरल स्वभाव के अनुसार किसी पर सन्देह प्रकट नहीं किया।

आश्विन वदी चौदह सं० १९४० वि० (२९ सितम्बर सन् १८८३) की रात्रि के समय स्वामीजी महाराज ने रसोइये से दूध लेकर पिया और सो गए। अर्ध रात्रि के समय तीव्र उदर शूल प्रारम्भ हो गया। महाराज की निद्रा भंग हो गयी। तीन वार वमन

हुआ, पर उन्होंने रात्रि के समय किसी को जगाकर कष्ट देना उचित न समझा। तीस सितम्बर प्रातःकाल महाराज विलम्ब से उठे। उठते ही पुनः वमन हुआ। उन्हें सन्देह हो गया कि किसी ने दूध में विष मिला कर दिया है। विषदोष के निराकरण के लिए महाराज ने जलपान कर पुनः वमन किया। शूल वेदना बढ़ती ही गई।

विष मिश्रित दूध पिलाने वाले रसोइये का नाम धौल मिश्र था या जगन्नाथ, इस विषय में लेखकों की भिन्न–भिन्न राय है। प्रचलित कथा तो यही है कि उनके रसोइये जगन्नाथ ने वेश्या नन्हीं जान द्वारा प्रलोभन दिये जाने पर दयानन्द सरस्वती को दूध में विष मिलाकर दिया।

पं० नानूराम ब्रह्मावर्त दयानन्द सरस्वती को शाहपुरा से जोधपुर लाने के लिए गया था। उसकी घोषणा के अनुसार नन्हीं जान के प्रोत्साहन पर कलिया उपनाम जगन्नाथ ने वहाँ के माली के साथ गुप्त मन्त्रणा कर दयानन्द सरस्वती को दूध में विष मिलाकर पीने के लिए दिया था।

जोधपुर के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता देवीप्रसाद का भी यही मत है कि नन्हीं जान ने वहाँ के माली को प्रलोभन दिया और माली ने स्वामीजी महाराज के रसोइये कलिया को महाराज को विष देने के लिए तैयार कर लिया।

राजकोट के एक महाशय की सूचना के आधार पर 'सद्धर्म प्रचारक' समाचारपत्र में इस विषय में जो समाचार प्रकाशित हुआ उसके अनुसार भी ब्राह्मणवंशीय जगन्नाथ ने, जो महाराज की पाकशाला में पाचन क्रिया भी किया करता था, किसी के बहकाने पर प्रलोभनवश दयानन्द सरस्वती को दूध में विष मिलाकर पिलाने का महाघातक कार्य किया। ज्ञान होने पर महाराज ने उसे सर्वथा क्षमा प्रदान कर कुछ रुपये दिये और तुरन्त जोधपुर राज्य की सीमा पार कर नेपाल जाने का आदेश दिया।

पापी ने अपना पापकर्म न छोड़ा। संन्यासी ने अपने क्षमाधर्म का परित्याग न किया। दया के सागर दयानन्द ने विष देकर मारने वाले जगन्नाथ को अपना दया का पात्र बनाकर जीवन–दान दिया।

दयानन्द सरस्वती के समीपवर्ती शिष्यजनों ने महाराज की तीव्र वेदना में किसी प्रकार की कमी न देखकर रावराजा तेजसिंह को बुलवाया। स्वामीजी महाराज

किसी हिन्दू चिकित्सक से ही चिकित्सा कराना चाहते थे। रावराजा ने जोधपुर जेल के डॉक्टर सूरजमल को बुलवाया। इस समय महाराज को वमन के साथ अतिसार भी शुरू हो गया था। ज्वरांश भी था। डॉ० सूरजमल की औषधि से ज्वर का वेग तो कुछ कम हुआ पर उदरशूल में कभी न हुई। कर्नल सर प्रतापसिंह ने डॉ० अलीमर्दानखाँ को स्वामीजी की चिकित्सा के लिये भेजा। डॉ० अलीमर्दानखाँ एक साधारण सब असिस्टैण्ट सर्जन था। मिथ्या प्रशंसावादी होने से राजकर्मचारियों का मुंह लगा था। डॉ० अलीमर्दानखाँ की चिकित्सा सर्वथा प्रतिकूल सिद्ध हुई। ज्यों–ज्यों औषधि दी गई महाराज का रोग बढ़ता गया।

दो अक्टूबर के दिन डॉ० अलीमर्दानखाँ ने महाराज को विरेचक औषधि दी। औषधि की मात्रा चारगुनी थी। महाराज के पूछने पर उसने कहा कि इससे आपको छः सात बार विरेचन होगा। तीन अक्टूबर प्रातः दस बजे तक तो विरेचन नहीं हुआ परन्तु उसके बाद चार अक्टूबर प्रातःकाल तक चालीस बार विरेचन हुआ। दिनभर विरेचन होता रहा। सायंकाल महाराज अपने आपको अत्यन्त निर्बल अनुभव करने लगे। मूर्छा आने लगी। तीव्रशूल और अतिसार के साथ महाराज के गले, चिह्वा, तालु तथा मुख में छाले पड़ गए। हिचकियाँ शुरू हो गई। सोलह अक्टूबर तक डा० अलीमर्दानखाँ की चिकित्सा चालू रही। प्रतिदिन दस पन्द्रह विरेचन होते रहे। शूल में किसी प्रकार की कमी न हुई। हिचकियाँ और छाले बढ़ते गए। अवस्था अधिक गम्भीर हो गई।

इस कष्टमय अवस्था में भी दयानन्द सरस्वती शान्त थे। चिकित्सक के मन में क्या भावना थी यह तो इतिहास के सूक्ष्म विवेचक ही बतला सकेंगे, पर स्वामीजी के मन में किसी प्रकार की सन्देह भावना न थी। डा० अलीमर्दानखाँ राजकर्मचारियों को यही कहता रहा कि किसी प्रकार की चिन्ता की बात नहीं, दयानन्द सरस्वती शीघ्र स्वस्थ हो जायेंगे।

बाहर अक्टूबर तक दयानन्द सरस्वती की रुग्णता का समाचार जोधपुर के बाहर किसी को ज्ञात न हुआ। इसी दिन राजपूताना–गजट में प्रथम बार महाराज के रोगी होने का समाचार प्रकाशित हुआ। अजमेर के एक भक्तजन की दृष्टि इस समाचार पर पड़ी। आर्यसमाज के सदस्यों में इस समाचार से हलचल होने लगी। लाला जेठमल को जोधपुर भेजा गया। जोधपुर पहुँच कर लाला जेठमल महाराज की दशा देखकर

अत्यन्त उद्वेलित हो गए। दयानन्द सरस्वती को प्रणाम कर निवेदन किया–महाराज! आप इस प्रकार कष्टमय अवस्था में हैं पर आपने किसी आर्यसमाज को अपने रोग–ग्रस्त होने की सूचना नहीं दी।

महाराज ने उत्तर दिया–प्रिय जेठमल ! दुःख–सुख तो शरीर के साथ बने रहते हैं। मेरी कष्टमय अवस्था को देखकर आप सब भी अपने आपको दुःखी अनुभव करते। अपने कष्ट के साथ सबको कष्ट देने की मेरी इच्छा नहीं थी।

ला० जेठमल ने उसी समय बम्बई, फर्रूखाबाद, मेरठ, लाहौर, अजमेर तथा अन्य स्थानों की आर्यसमाजों को तार द्वारा महाराज के रोग की गम्भीर अवस्था की सूचना दी। महाराज के स्वास्थ की जानकारी के लिए तार आने लगे।

यह देखकर सब भक्तजन आश्चर्य में थे कि हम सब के नवजीवन देने वाले परम श्रद्धेय गुरु के जीवन के साथ जोधपुर में खिलवाड़ हो रहा है। जोधपुर में उस समय डॉ० रोडमस और डॉ० नवीनचन्द्र गुप्त दो सुयोग्य प्रथम श्रेणी के चिकित्सक थे। इस गम्भीर अवस्था में भी महाराज की सम्भाल करने वाले रावराजा तेजसिंह तथा कर्नल सर प्रतापसिंह ने इन दोनों में से किसी डाक्टर को महाराज की चिकित्सा में परामर्श के लिए नहीं बुलवाया। एक साधारण तृतीय श्रेणी के सब असिस्टैण्ट डॉ० अलीमर्दानखाँ के हाथ दयानन्द सरस्वती के जीवन की बागडोर सम्भाल कर निश्चित हो गए। रावराजा तेजसिंह प्रतिदिन महाराज की दशा देखने आते थे पर उनकी बिगड़ती हुई दशा देखकर भी उन्होंने किसी योग्य चिकित्सक को चिकित्सा परामर्श के लिए बुलवाने का यत्न नहीं किया। कर्नल सर प्रतापसिंह और जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्त सिंह तो स्वामीजी महाराज की स्वास्थ्य दशा देखने भी कभी नहीं आए।

ला० जेठमल ने दयानन्द सरस्वती के रोग की गम्भीर दशा देखकर उन्हें यथासम्भव शीघ्र अजमेर ले जाना चाहा। पन्द्रह अक्टूबर के दिन डॉ० अलीमर्दानखाँ भी महाराज के रोग की गम्भीर दशा देखकर डर गया। वह नहीं चाहता था कि स्वामीजी महाराज जोधपुर में ही शरीर त्याग करें और उसे इस अपयश का भागी बनना पड़े। डॉ० अलीमर्दानखाँ ने दयानन्द सरस्वती को वायु परिवर्तन के लिए आबू ले जाने का परामर्श दिया। इस दिन प्रथम बार जोधपुर राज्य के प्रधान चिकित्सक डॉ०

रोडमस को दयानन्द सरस्वती की स्वास्थ्य-परीक्षा के लिए बुलवाया गया। उसने भी महाराज को आबू भेजने के लिए सहमति प्रकट की। आबू में जोधपुर राज्य के भवन में महाराज के निवास का प्रबन्ध किया गया।

सोलह अक्टूबर के दिन जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह तथा कर्नल सर प्रतापसिंह दयानन्द सरस्वती को विदा करने के लिए उनके निवास स्थान पर आए। महाराज की गम्भीर दशा देखकर चिन्ता प्रकट की। महाराज के आबू तक जाने के लिये सभी प्रकार की सुविधाओं का प्रबन्ध किया। महाराजा जसवन्तसिंह ने २५००) रु० तथा दो शाल महाराज को भेंट किये। अपनी फलालैन की पेटी अपने हाथ से महाराज को बांधी जिससे उन्हें लेटने में कष्ट न हो तथा पेट पर शीतल वायु का बुरा प्रभाव भी न पड़े। डा० सूरजमल और चारण नवलदान को आबू रोड तक स्वामीजी महाराज के साथ जाने का आदेश दिया।

दयानन्द सरस्वती को धीरे से पालकी पर लिटाया गया। सम्मान प्रदर्शन के लिए जोधपुर नरेश ने भी पालकी पर कंधा लगाया। अपने कर्मचारियों के साथ कोठी के द्वार तक स्वामीजी महाराज को छोड़ने गए। विदाई के समय जोधपुर नरेश ने स्वामीजी महाराज के स्वास्थ्य लाभ करने पर पुनः जोधुपर पधारने की प्रार्थना की।

मार्ग लम्बा था। देह की दशा गम्भीर थी। अतिसार, वमन और उदरशूल सभी कष्ट उग्र अवस्था में थे। महाराज का चित्त शान्त था। किसी प्रकार की आह न थी।

डॉ० सूरजमल की पत्नी जोधपुर में रोग पीड़ित थी, अतः महाराज ने आधे मार्ग में ही उन्हें जोधपुर वापिस जाने का आदेश दिया।

जिला अलीगढ़ के प्रतिष्ठित ठाकुर भूपालसिंह महाराज के परम भक्त थे। वे महाराज की सेवा करने के लिए आबू के मार्ग में ही महाराज के पास पहुँच गए। उन्होंने सेवा का संपूर्ण कार्य अपने हाथ में ले दिया। जीवन के अन्तिम समय तक महाराज को उठाना, बिठाना, मलमूत्र साफ करना, वस्त्र धोना आदि सभी कार्य वे अपने हाथ से करते रहे। आबू पर्वत पर मेरठ से लक्ष्मणस्वरूप, फर्रूखाबाद से ला० शिवदयाल, बम्बई से श्रीकृष्णदास भी महाराज की सेवा में आ पहुँचे। जोधपुर से कर्नल सर प्रतापसिंह भी महाराज के दर्शन करने आबू पधारे।

इक्कीस अक्टूबर के दिन प्रातः काल स्वामीजी महाराज आबू रोड़ पहुँचे।

यहाँ कुछ रुकने के पश्चात् उन्हें पुनः पालकी पर लिटा दिया गया। महाराज की पालकी आबू रोड़ से आबू पर्वत जा रही थी। पंजाब के जिला शाहपुर के निवासी डॉ० लछमनदास आबू पर्वत से अजमेर जाने के लिए आबूरोड की ओर आ रहे थे। वे राजकीय अस्पताल में काम करते थे। उन्हें आबू से अजमेर के अस्पताल में सेवा के निमित्त जाने के लिए आदेश दिया गया था।

मार्ग में स्वामीजी महाराज को पालकी में ले जाते हुए देखकर पूछताछ करने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि इसमें दयानन्द सरस्वती विराजमान हैं। उनकी दशा गम्भीर है। डॉ० लछमन दास उसी समय महाराज के साथ वापिस आबू पर्वत की ओर चल पड़े। मार्ग में आवश्यक चिकित्सा व्यवस्था भी करते रहे। आबू पर्वत पहुँचने पर भी डॉ० लछमनदास की चिकित्सा जारी रही। इससे महाराज को कुछ शान्ति मिली। वमन अति सार में भी बहुत लाभ हुआ। चौबीस अक्टूबर के दिन महाराज को नींद भी आई।

राजस्थान के चीफ मैडिकल ऑफिसर कर्नल स्पैंसर की आज्ञानुसार डॉ० लछमनदास को अजमेर जाना था। दयानन्द सरस्वती जैसे महापुरुष की सेवा और चिकित्सा का सौभाग्य किसी विरले भाग्यवान मनुष्य को ही प्राप्त हो सकता था। डॉ० लछमनदास ने कर्नल से प्रार्थना की कि उन्हें अपने गुरु दयानन्द सरस्वती की सेवा के लिए दो मास का अवकाश दिया जाये। कर्नल ने अवकाश की प्रार्थना स्वीकार न की। डॉ० लछमन दास ने सेवा से त्याग पत्र देने का निश्चय किया, पर जब दयानन्द सरस्वती को इसका पता लगा तो उन्होंने त्याग पत्र फाड़ कर फेंक दिया और डॉ० लछमनदास को अजमेर जाने का आदेश दिया। भक्त डॉ० लछमनदास का मन न माना। उसने फिर त्यागपत्र लिखकर कर्नल स्पैंसर की सेवा में प्रस्तुत किया। कर्नल स्पैंसर ने त्यागपत्र अस्वीकृत करते हुए कहा कि तुम्हें अजमेर जाना पड़ेगा। मैं तुम्हारे गुरु की चिकित्सा स्वयं करूँगा।

डॉ० लछमनदास को न चाहते हुए भी अजमेर जाना पड़ा। महाराज का भी यही आदेश था।

कर्नल स्पैंसर की चिकित्सा महाराज को अनुकूल न पड़ी। पुनः रोग ने उग्ररूप धारण कर लिया। स्वामीजी महाराज के भक्त भूपालसिंह ने महाराज से अजमेर चलने के लिए निवेदन किया। बम्बई के श्री सेवकराम कर्शनदास ने भी

महाराज ने नम्रतापूर्वक अजमेर चलने के लिए अनुरोध किया। महाराज की इच्छा न थी कि शरीर की इस विषम अवस्था में भक्तजनों को कष्ट दिया जाये। न चाहते हुए भी भक्तजनों का अनुरोध स्वीकार करना पड़ा। कार्तिक वदी ग्यारह (२६ अक्टूबर) के दिन महाराज ने आबू पर्वत से प्रस्थान किया। अगले दिन चार बजे ब्राह्म मुहूर्त के समय अजमेर पहुँच गए। वहाँ आगरा दरवाजे के बाहर भिनाई हाउस में महाराज के विश्राम का प्रबन्ध किया गया।

डॉ० लछमनदास को पुनः चिकित्सा के निमित्त बुलवाया गया। स्वास्थ में उतराव-चढ़ाव दीखते रहे, पर महाराज अनुभव करने लगे कि अब इस देह के त्याग का समय आ गया है। विष का प्रभाव सारे शरीर में व्याप्त हो गया था। उदरशूल के साथ कफ का प्रकोप भी होने लगा। अन्तर्दाह बढ़ता गया। सारे शरीर में छाले फैलने लगे।

दीपमालिका के एक दिन पूर्व लाहौर से पं० गुरुदत्त विद्यार्थी एम० ए० (साईंस) तथा ला० जीवनदास भी महाराज के दर्शनों के निमित्त अजमेर पहुँच गए। उदयपुर से महाराणा सज्जनसिंह ने मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या को महाराज के स्वास्थ्य समाचार जानने के लिए भेजा, साथ ही कहलाया कि महाराज की चिकित्सा में कोई कमी न होने पाये।

सभी समागन्तुक भक्तजन महाराज की गम्भीर अवस्था को देख कर अधीर हो उठे। इस आतुर अवस्था में महाराज अपनी शान्त दृष्टि से सब को धीरज बंधा रहे थे। ला० जीवन लाल ने महाराज से पं० गुरुदत्त का परिचय कराया।

दीपावली का दिन

कार्तिक अमावस्या (३० अक्टूबर) के दिन डॉ० लछमनदास ने महाराज के जीवन की सब आशाएँ छोड़ दीं। भक्तजनों से अनुरोध किया कि किसी अन्य सुयोग्य डाक्टर को भी महाराज को दिखाने के लिए बुलावाया जाये। अजमेर के सिविल सर्जन डॉ० न्यूमैन को बुलाया गया। डॉ० न्यूमैन महाराज की दशा देखकर आश्चर्य में था। विष का प्रभाव सारे शरीर में छाया हुआ था। रोम-रोम में अन्तर्दाह था। इस कष्टदायी गम्भीर अवस्था में यह साधु शान्त था। साहस और सहनशीलता की पराकाष्ठा थी। डॉ० न्यूमैन ने रोग परीक्षा के बाद डॉ० लछमनदास के चिकित्सा-क्रम से सहमति

प्रकट करते हुए छाती में कफ के प्रकोप को कम करने के लिए पुलटिस लगाने का परामर्श दिया। पर दशा में कोई परिवर्तन न हुआ।

यद्यपि आज के दिन दशा अधिक गम्भीर थी। पर दयानन्द सरस्वती अपने आपको कुछ अच्छा अनुभव कर रहे थे। प्रातः काल ही नाई को बुलवाया। अजमेर आर्यसमाज के मन्त्री बाबू मथुराप्रसाद नाईं की तलाश में गए। नाई ने कहा–आज दीपमालिका का दिन है, मैं क्षौर–कर्म के पांच रुपये लूंगा, वे उसे स्वामीजी के पास ले आये। क्षौर–कर्म के उपरान्त महाराज ने स्वयं मथुराप्रसाद से कहा कि इसे पांच रुपये दे दो। कमरे के बाहर आने पर उसे एक रुपया और दिला दिया।

ग्यारह बजे के समय महाराज ने शौच के निमित्त उठना चाहा। चार जनों ने उन्हें उठाया। निवृत्त होने पर पुनः पलङ्ग पर लिटा दिया। इस समय श्वास की गति तीव्र थी। भक्तजनों ने महाराज से पूछा–आप कैसा अनुभव कर रहे हैं ?

महाराज ने शान्त भाव से उत्तर दिया–आज मैं अच्छा अनुभव कर रहा हूँ। एक मास के बाद आज का दिन आराम का है।

लाला जीवनदास ने पूछा–आप कहाँ है?

महाराज ने कहा–"ईश्वरेच्छा में"

चार बजे के समय महाराज ने अपने शिष्य आत्मानन्द को बुलाया। उसे अपने पीछे सिर के पास बैठने का आदेश दिया। उससे पूछा–आत्मानन्द! तुम क्या चाहते हो?

आत्मानन्द ने कहा–महाराज ! मैं ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि आप अच्छे हो जायें।

महाराज ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा–यह देह पंचभौतिक है। इस का अच्छा क्या होगा? पुनः उसके सिर पर आशीर्वाद का हाथ रखकर कहा–आनन्द से रहना।

महाराज के दर्शनार्थ काशी से स्वामी गोपालगिरि भी आए हुए थे। उन्हें भी इसी प्रकार आशीर्वाद दिया।

इसके अनन्तर दो सौ रुपये और दो दुशाले मंगाकर कहा–आत्मानन्द और भीमसेन दोनों को ये दे दो।

दूर प्रदेशों से आए हुए सभी भक्तजन शोकार्द्रीत्ति श्रद्धाभरी भावना से महाराज

के सामने खड़े हो गए। महाराज ने उन्हें कृपाभरी दृष्टि से देखा, मानो मौन उपदेश कर रहे हों—भक्त पुरुषो ! धैर्य और साहस धारण करो। अधीर न बनो। उदास होने का कोई कारण नहीं। यह शरीर तो नाशवान् है।

महाराज का मुखमण्डल शान्त और प्रसन्न था। किसी प्रकार के शोक अथवा खेद का चिह्न न था। किसी प्रकार की आह न थी। धैर्य के साथ भक्तजनों से बात कर रहे थे। इसी समय अलीगढ़ से महाराज के सर्वप्रथम भक्त शिष्य सुन्दरलाल भी आ गए।

पाँच बजे के पश्चात् महाराज ने सब समागत भक्तजनों को आदेश दिया कि वे उनके पीछे खड़े हो जायें। दरवाजे और रोशनदान खुलवा दिये। पूछा—आज कौन–सा मास, पक्ष और दिन है ?

किसी भक्त ने कहा—महाराज, आज कार्तिक मास की अमावस्या का दिन है। मङ्गलवार है।

यह सुनकर महाराज ने ऊपर की ओर दृष्टिपात किया, पुनः चारों ओर चमत्कारभरी दृष्टि से देखा और वेद मन्त्रों का पाठ करना आरम्भ कर दिया। कुछ समय वेदमन्त्र पाठ कर संस्कृत में ईश्वर की स्तुति की। गुणगान के साथ आनन्द मग्न होकर गायत्री मन्त्र का उच्चारण किया और शान्त समाधिस्थ हो गए। पुनः आँखे खोलकर "ओ३म्" का उच्चारण किया और कहा—

'हे दयामय सर्वशक्तिमान् ईश्वर ! तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो। अद्‌भुत तेरी लीला है।"

इन शब्दों के साथ स्वयं करवट ली। एक बार श्वास को रोक कर पुनः सदा के लिए बाहर निकाल दिया। दीपमालिका के दिन सायंकाल छः बजे का समय था। दयानन्द सरस्वती इहलीला समाप्त कर ज्योतिर्मय प्रभु की शरण में चले गए।

भक्तजन निहारते रह गए। पं० गुरुदत्त विद्यार्थी प्रथम बार दयानन्द सरस्वती के दर्शन करने आए थे। पाश्चात्य विज्ञान के विद्यार्थी थे। ईश्वर पर विश्वास कुछ कम था। भक्तजनों के साथ इस योगी की लीला देख रहे थे। असह्य वेदना और अन्तर्दाह में भी यह उसकी शरण में प्रसन्नचित जा रहा है। यमराज खड़ा हुआ देख रहा है। यह योगी सदा के लिए अमर पद प्राप्त कर रहा है।

गुरुदत्त को भी इस दिव्य शक्ति के दर्शन हो गए। अन्धकार नष्ट हुआ। दिव्य ज्योति का अन्तः प्रवेश हो गया। आज से वह पूर्ण आस्तिक हो गया। ईश्वर-विश्वासी बन गया।

सभी समुपस्थित भक्तजनों के नेत्र इस योगी की वेदनामय विदाई से अश्रुपूर्ण थे। पर इस विदाई के दिव्यतापूर्ण दृश्य को देखकर वे अपने हृदयों में अद्भुत ज्योति के प्रवेश का गौरव अनुभव कर रहे थे। यद्यपि उनके घरों में आज अन्धकार था पर हृदयों में दीपावली का अमित प्रकाश था।

अगले दिन (31 अक्टूबर 1883) इस योगी के शरीर की अन्त्येष्टि क्रिया की तैय्यारी हुई। काष्ठमय अर्थी पर चन्दन, काष्ठ, कपूर आदि सुगन्धित पदार्थ रखे गये। शरीर पर चन्दन का लेप किया गया। अर्थी पर रखकर एक विशाल शोभा-यात्रा (जूलूस) के साथ श्मशानघाट पर ले जाया गया। इस शोभा-यात्रा में अजमेर की जनता के साथ वहाँ रहने वाले बङ्गाली, पंजाबी, दाक्षिणात्य तथा अन्य भक्त पुरुष बड़ी संख्या में सम्मिलित हुए। श्री हरविलास शारदा भी इस अर्थी के साथ थे। उनके कथानुसार सोलह पुरुष एक समय में उस अर्थी को उठाकर ले जा रहे थे। सभी सज्जन क्रमशः कंधा दे रहे थे। साथ-साथ वेद मन्त्रों का उच्चस्वर से गान हो रहा था।

श्मशानघाट पर अन्त्येष्टि क्रिया के निमित्त विशेष रूप से वेदी का निर्माण किया गया। संस्कार-विधि के अनुसार वैदिक विधि से अन्त्येष्टि क्रिया की गई।

जिस तेजस्वी विशाल काया को देखकर सभी भक्तजन नतमस्तक होकर अभिनन्दन करते थे, आज उसे अपने हाथों से चिता में रखकर अग्नि की ज्वालाओं को समर्पित कर रहे थे। सब के नेत्रों में अश्रु भरे थे। वाणी में स्पन्दन नहीं। मन में शोकावेग का चिन्तन नहीं। परन्तु उस महामानव के कार्य को भविष्य में कैसे बढ़ायेंगे, इसी सोच में डूबे हुये। अन्त्येष्टि क्रिया की समाप्ति पर मूक भावना के साथ समुपस्थित जन धीमी गति से अपने-अपने घरों को चले गए।

सर्वत्र शोक- सारे भारत में शोक की घटा छा गई। नगर-नगर में शोक सभाएं आयोजित की गईं। देशभर में लगभग सभी समाचार पत्रों में उनकी मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया और लेख लिखकर उनके गुणों व कार्यों की प्रशंसा की गई।